प्रियप्रवास विवेचन

(समालोचनात्मक अध्ययन)

लेखक—

श्री [illegible] गुप्त, [illegible],
साहित्यरत्न, साहित्य भास्कर, साहित्योपाध्याय,
साहित्यभूषण, साहित्यालंकार, आचार्य आदि

प्रकाशक
नवयुग पुस्तक भण्डार
अमीनुद्दौला पार्क,
लखनऊ

प्रथमावृत्ति] [मूल्य १।।।)

प्रकाशकीय वक्तव्य

समीक्षा मानव-जीवन एवं साहित्य-गत सत्य के दर्शन का सफल प्रयास है। इसका ध्येय है जीवन तथा साहित्य में सत्यं शिवं सुन्दरम् की स्थापना तथा कुत्सित, कुरूप एवं अशिवं का बहिष्कार। प्रस्तुत पुस्तक, प्रियप्रवास-विवेचन इसी सिद्धान्त का ज्वलन्त उदाहरण है।

योग्य लेखक श्री शिवस्वरूप गुप्त एम० ए० बी० टी०, साहित्य-रत्न ने महाकवि 'हरिऔध' विरचित 'प्रियप्रवास' को भली भाँति समझने में सहायतार्थ इसे प्रस्तुत किया है। इसमें विद्वान् लेखक ने प्राकृतिक चित्रण, नारी चित्रण, कृष्ण-स्वरूप, लोक संदेश, चरित्र चित्रण, छन्द-विधान, भाषा एवं रस संचार पर बड़ा ही मनोहारी एवं शास्त्रीय विवेचन किया है। कृति स्वयं ही इसकी साक्षी है। कृति-पठन के पश्चात ही मेरे कथन का सत्यासत्य जाना जा सकता है।

लोकोक्ति है "नाई बाल कितने", "यजमान सामने है" अधिक क्या कहूँ।

प्रकाशक

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—परिचयात्मक अध्ययन	१
२—हरिऔध जी का गद्य	६
३—हरिऔध और गुप्त जी	१४
४—हिन्दी साहित्य में हरिऔध जी का स्थान ...	२०
५—महाकाव्य के लक्षण और प्रियप्रवास	२२
६—हरिऔध जी सुधारक रूप में	२६
७—प्रियप्रवास में नारी चित्रण	२८
८—प्रियप्रवास में कृष्ण का स्वरूप	५१
९—प्रियप्रवास में प्रकृति चित्रण	६४
१०—प्रियप्रवास में विरह	७२
११—प्रियप्रवास में लोक संदेश	७७
१२—प्रियप्रवास एवं कामायनी पर सूक्ष्म दृष्टि ...	८६
१३—प्रियप्रवास और सूर के माधुर्य भाव का तुलनात्मक अध्ययन	९०
१४—हरिऔध जी की कला	९४
१५—प्रियप्रवास की कथा	१०८
१६—प्रियप्रवास का हिन्दी साहित्य में स्थान	१२४

१

परिचयात्मक अध्ययन

कवि परिचय एवं रचनाएँ—महाकवि पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय का जन्म बैसाख कृष्ण ३ सं० १९२२ को निजामाबाद में हुआ था। उनके पूर्वज बदाऊँ-निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम पं० भोलासिंह था। वे बहुत पढ़े लिखे न थे। उनके पिता के भाई ज्योतिष-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता था। वे अपने भतीजों का बड़ा ध्यान रखते थे। इस कारण उनके भतीजों पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्हीं की देख रेख में हरिऔध जी का शिक्षण आरम्भ हुआ। उन्होंने पहले फारसी का अध्ययन किया, इसके पश्चात् तहसीली स्कूल में अपना प्रवेश करा लिया। सं० १९३६ में उन्होंने वहाँ से मिडिल परीक्षोत्तीर्ण की। फिर क्वीन्स कालेज, काशी में अंग्रेज़ी पढ़ने के अभिप्राय से प्रवेश कराया किन्तु स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण आगे नहीं बढ़ सके। अतः घर पर ही उनके शिक्षण की व्यवस्था की गई।

सं० १९३९ में हरिऔधजी का विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। आर्थिकावस्था शिथिल होने के कारण उनको सं० १९४२ में नौकरी करना पड़ी। सर्व प्रथम निजामाबाद के तहसीली स्कूल में उन्होंने शिक्षक के रूप में कार्य किया और यहीं उन्होंने नार्मल परीक्षोत्तीर्ण की। कुछ वर्ष तक वे इसी स्थान पर कार्य करते रहे। बन्दोबस्त-काल में उन्हें

कानूनगो नियुक्त किया गया। शनैः-शनैः उन्होंने उन्नति की। रजिस्ट्रार कानूनगो, सदर नायब कानूनगो तथा सदर कानूनगो के स्थानों पर लगभग चौतीस वर्ष तक सफलता पूर्वक कार्य करने के पश्चात् उन्होंने पेन्शन ली। अब उन्होंने अपना जीवन साहित्य-सेवा में अर्पण कर देने का निश्चय किया। उस समय काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी की उच्च श्रेणियों के लिए एक अध्यापक की आवश्यकता थी। सन् १९२३ से उन्होंने अवैतनिक अध्यापक के रूप में काशी विश्वविद्यालय में कार्य करना स्वीकार कर लिया। सन् १९४१ तक वह इस स्थान पर कार्य करते रहे। वहां से अवकाश ग्रहण करने पर वे आजमगढ़ चले गए और इसी को अपना स्थायी निवास-स्थान बनाया। ६ मार्च सन् १९४७ को हमारे इस साहित्य-देवता ने हमसे सदा के लिए विदा ली।

हरिऔध जी का जीवन भारतीय जीवन का आदर्श था। यद्यपि उनके भाई इँगलैंड जाकर पाश्चात्य सभ्यता में भली-भाँति रंग चुके थे और उन्होंने सिक्खों का बाना भी त्याग दिया था परन्तु हरिऔध जी में भारतीय आदर्श को त्याग देने की क्षमता न थी। बाल्यावस्था में ही उन पर निज़ामाबाद के सिक्ख गुरु सुमेरसिंह की गहरी छाप लग चुकी थी। बाबा सुमेरसिंह के सत्संग से उनकी धार्मिक भावना का जो विकास हुआ, उसने उनकी जीवन-धारा को ही दूसरी ओर मोड़ दिया। कर्मकाण्डी पंडितों के कुल में जन्म लेने पर भी वास्तव में शुद्ध सनातनी पंडितों की धार्मिकता का विकास उनमें नहीं हो पाया। वे आरम्भ से अन्त समय तक सिक्ख धर्म के अनुयायी बने रहे।

हरिऔध जी को निज़ामाबाद से विशेष प्रेम न था। वे अपने ग्राम के सभी निवासियों को जानते थे। सरकारी नौकरी के समय भी उनका निवास-स्थान आजमगढ़ था किन्तु प्रत्येक शाम को वह निज़ामाबाद अवश्य पहुंच जाते थे। जिस समय वह सदर कानूनगो थे, उस समय इस स्थान को पाना बड़े गौरव की बात समझी जाती थी किन्तु

हरिऔध जी को हम का तनिक भी गर्व न था। उनके स्वभाव में कृत्रिमता तथा चौचल्य का लेश भी न था। बाल्यावस्था से ही वे गम्भीर प्रकृति के थे। पत्नी की मृत्यु के पश्चात उनकी गम्भीरता और भी बढ़ गई। कोमलता तथा उदारता उनके स्वभाव का विशेष गुण था। देश की संस्कृति तथा सभ्यता का उन्हें गर्व था। हास-परिहास से वे बहुत कम प्रेम करते थे। वे एकान्त जीवन के अनुरागी थे। वे एक अच्छे आलोचक तथा वक्ता भी थे। सं० १९८० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ये सभापति भी चुने गए थे। प्रियप्रवास पर उन्हें सं० १९९५ में मंगलाप्रसाद पारितोषिक एवं सम्मेलन की ओर से 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि दी गई।

रचनाएँ—महाकवि हरिऔध की समस्त रचनाओं को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। १. अनूदित और २. मौलिक। शैली की दृष्टि से अनूदित रचनाओं के भी दो भेद किए जा सकते हैं—गद्य और पद्य। (१) गद्य में 'वेनिस का बाँका,' अनूदित उपन्यास है 'रिपवानविंकिल', हिन्दी में उर्दू 'रिपवानविंकिल' का अनुवाद और कहानी है; 'नीति निबंध' अनूदित निबन्धों का संग्रह है। (२) पद्य में 'उपदेश कुसुम' के तीन भाग जो गुलिस्ता के आठवें अध्याय के अनुवाद हैं विनोद वाटिका, गुलज़ार दबिस्ताँ का रूपान्तर है। हरिऔध की मौलिक रचनाएँ चार प्रकार की हैं।

(१) महाकाव्य—प्रियप्रवास और वैदेही-बनवास।

(२) स्फुटकाव्य—रुक्मिणी परिणय, प्रद्युम्न-विजय, चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, बोल चाल, रस-कलश, पद्य प्रसून, पारिजात, ऋतु-मुकुर, काव्योपवन, प्रेम-पुष्पोपहार, प्रेम प्रपंच, प्रेमाम्बु-प्रस्रवण, प्रेमाम्बु प्रवाह, और प्रेमाम्बु वारिधि।

(३) उपन्यास—ठेठ हिन्दी का ठाठ और अधखिला फूल।

(४) आलोचनात्मक—हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, कबीर वचनावली की आलोचना।

हरिऔध के इस साहित्य से उनकी साहित्यिक-प्रतिभा के विषय में अच्छी जानकारी मिलती है।

कवि पर प्रभाव—पिछले पृष्ठों में हमने बताया कि हरिऔध जी बाबा सुमेरसिंह के शिष्य थे। सुमेरसिंह एक अच्छे कवि भी थे। हरिऔध जी अपने घरवालों के साथ उनके यहाँ जाकर सत्संग में खूब भाग लिया करते थे। उनके सत्संग में दो बातें प्रधान थीं। पहली बात सूर, कबीर, दादू, नानक आदि कवियों के रचे हुए पदों का स्तुति रूप में गान करना और दूसरी बात थी समस्या-पूर्ति। प्रति दिवस बाबा सुमेरसिंह के यहाँ कोई न कोई नवीन कवि अवश्य आकर उनका मनोरंजन करता। हरिऔध जी इन सतसंगों में बड़े चाव से भाग लिया करते थे। वह निरन्तर कवियों की पवित्र वाणी और समस्या पूर्ति का रस लेते थे। इस धार्मिक वातावरण से धार्मिक भावना के विकास के साथ ही साथ हरिऔध की साहित्यिक-प्रगति भी हुई। सुमेरसिंह इन दोनों प्रवृत्तियों का नेतृत्व करके हरिऔध के धार्मिक तथा साहित्यिक गुरु कहलाए। सुमेरसिंह का उपनाम था हरिसुमेर। इससे प्रभावित होकर उपाध्याय जी ने भी अपना उपनाम 'हरिऔध' रक्खा। काव्य क्षेत्र मे आप इसी नाम से विख्यात है। सुमेरसिंह भारतेन्दु के समकालीन थे। इस समय काव्य क्षेत्र में ब्रजभाषा का ही प्रयोग होता था। इस भाषा का प्रकाण्ड विद्वान ही कवि के उच्च पद पर आसीन हो सकता था और उसके लिए भी यह आवश्यक था कि वह सवैयों मे समस्या-पूर्ति की कला में प्रवीण हो; अतः हरिऔध का काव्य जीवन समस्या-पूर्तियों से ही आरम्भ हुआ। रीति कालीन समस्त समस्याओं को लेकर वे काव्य क्षेत्र में उतरे, कुछ समय तक वे इन्हीं समस्याओं में लीन रहे किन्तु द्विवेदी युग में उनकी काव्य धारा में नवीन परिवर्तन आ गया। इस युग से प्रभावित होकर उन्होंने ब्रज को त्याग कर खड़ी बोली को काव्य-भाषा बनाया। इस भाषा से उनकी काव्य-प्रतिभा में नवीनता आ गई और उन्होंने इसी भाषा में अपने कई

छन्दों की रचना की। द्विवेदी काल में साहित्य के दोनों अंगों गद्य-तथा पद्य की भाषा में परिवर्तन हुआ। अतः हरिऔध जी को अपनी भाषा को मांजने एवं परिष्कृत करने का अच्छा अवसर हाथ लगा। इस युग के समाप्त होने पर नवीन युग ने अपनी नवीन अनुभूतियों, समस्याओं एवं कल्पनाओं से साहित्य को अनुप्राणित किया। इसका भी हरिऔध जी पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी इस युग की रचनाओं में नवीनता लक्षित होती है। इन रचनाओं को देखने से हरिऔध जी इसी युग की उपज ज्ञात होते हैं किन्तु इस कथन में सत्यांश अधिक नहीं है। साहित्यिक दृष्टि से हरिऔध का जन्म तीन बार हुआ—१—भारतेन्दु काल के हरिऔध, २—द्विवेदी युग के हरिऔध, ३—नव-जागरण काल के हरिऔध। भारतेन्दु काल उनके काव्य-जीवन का प्रारम्भिक काल था, द्विवेदी युग उनके जीवन का तरुण काल था और नव जागरण काल उनके काव्य जीवन का प्रौढ़ काल था। उनके साहित्य में तीनों युगों की चेतनाओं एवं समस्याओं का प्रतिपादन मिलता है। इन तीनों युगों की प्रवृत्तियों को अपने काल में त्रिवेणी बहा कर हरिऔध जी ने अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। वे अपनी साहित्य-चेतना में सर्वथा सचेत रहे हैं। उनका साहित्य भाषा के उतार-चढ़ाव का साहित्य है। साहित्य क्षेत्र में वे कभी ऊपर चढ़े हैं तो कभी नीचे। उन्होंने अपनी प्रतिभा का विकास एक युग में न किया था वरन तीन युगों में किया है। कभी उन्होंने भाषा का परिमार्जन करना चाहा तो कभी भावों का। उनका विकास प्रत्येक युग में निश्चित सीमा के भीतर हुआ। अतः प्रसाद की भाँति उनकी विकास की रेखा पहिचानना कठिन है। संक्षेप में कहा जा सकता है 'युग के परिवर्तन के साथ-साथ उनकी काव्य धारा भी परिवर्तित होती रही।' बस यही हरिऔध का रहस्य है।

पश्चात् उन्होंने 'अधखिला फूल' हिन्दी साहित्य को भेंट किया। इन दोनों उपन्यासों का भाषा की दृष्टि से बड़ा महत्व है।

कबीर वचनावली तथा प्रियप्रवास की भूमिका लिखकर उन्होंने आलोचना-क्षेत्र में अपनी रुचि दिखाई। 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' नामक पुस्तक में उनकी प्रतिभा भली भाँति प्रस्फुटित हुई है। कुछ मौलिक निबन्धों की रचना भी उन्होंने की है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिस युग में उन्होंने गद्य लेखन आरम्भ किया उस युग की दृष्टि से उसका विशेष महत्त्व है। कहा जा सकता है कि उनका गद्य साहित्य आज के गद्य साहित्य की आधार शिला है।

काव्य पर एक दृष्टि—अपने गद्य की अपेक्षा काव्य के लिए ही हरिऔध जी अधिक प्रसिद्ध हैं। वह कवि के ही रूप में हमारे समक्ष आते हैं। इसी रूप में उनका साहित्यिक जीवन आरम्भ हुआ। उन्होंने कई काव्य ग्रन्थ रचे हैं। अपनी प्रारम्भिक रचनाएँ उन्होंने दोहों में लिखी। उदाहरणार्थ निम्न दोहा देखिए—

जाकी माया दाम में, बँधे विरंच लखाहिं।
प्रेम डोरि गोपिन बँधे, सो डोलत जग माहिं॥

अपनी सत्रह वर्ष की अल्पायु में कविवर हरिऔध जी ने इस प्रकार के दोहे रचे थे। सन् १८८५ में उन्होंने 'रुक्मिणी परिणय' तथा 'प्रद्युम्न-विजय व्यायोग' की रचना की। इसके पश्चात् उनके तीन संग्रह प्रेमाम्बु-वारिधि, प्रेमाम्बु प्रस्रवण, और 'प्रेमाम्बु-प्रवाह' सन् १८९६ में प्रकाशित हुए। इन काव्यों में कहीं भी कृष्ण को ब्रह्म के रूप में और कहीं साधारण मनुष्य के रूप में अंकित किया गया है। 'प्रेम प्रपंच' भी लगभग इसी समय लिखा गया था। इन सब ग्रन्थों का संकलन काव्योपवन में उन्होंने किया। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन काल में कई ग्रन्थों की रचना की। उनकी यह सब रचनाएँ भारतेन्दु काल अन्तर्गत आती हैं और भारतेन्दु काल की सारी प्रवृत्तियों से

प्रभावित दीख पड़ती है। शृंगार-सिन्दूर के रूप में उन्होंने 'रस कलश' की भूमिका भी इसी काल में लिखी थी।

द्विवेदी युग में हरिऔध जी की काव्य प्रतिभा में परिवर्तन हुआ। इस युग से प्रभावित होकर उन्होंने ब्रज-भाषा का बहिष्कार कर खड़ी बोली को अपने काव्य का माध्यम बना कर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रियप्रवास' की रचना की। यह इसी महाकाव्य के कारण हिन्दी में प्रसिद्ध हैं। इस के पश्चात् उन्होंने 'वैदेही वनवास' नामक महाकाव्य लिख कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। यह काव्य भी इसी युग (द्विवेदी युग) की देन है। काव्य कला की दृष्टि से इसका अधिक महत्व नहीं पर भाषा की दृष्टि से यह अनुपम है। बोलचाल की भाषा में 'बोलचाल, चुभते चौपदे, चोखे चौपदे' आदि उनकी कृतियाँ हैं। 'बोलचाल' में बालों से लेकर पैर के तलवों तक पर भावमयी कविताएँ हैं। इन चौपदों में राज और समाज, व्यष्टि और समष्टि, लोक और परलोक, नीति तथा धर्म आदि सभी पर हरिऔध जी ने सूक्तियों को सजाया है। उदाहरण के लिए—

> जब हमारी ऐंठ ही जाती रही,
> तब भला हम मूँछ क्या हैं ऐंठते।

हरिऔध की इन सूक्तियों से साहित्य के रत्नों की वृद्धि हुई। चोखे-चौपदे की सूक्तियों में मानव हित तथा समाज के कल्याण की भावनाएँ भरी पड़ी हैं। उनका एक चौपदा देखिये—

> मन्दिरों, मसजिदों कि गिरजो में,
> खोजने हम कहाँ कहाँ जाएँ।
> वह तो फैले हुए जहाँ में हैं,
> हम कहाँ तक निगाह फैलाएँ।

इन चौपदों में समाज की कुरीतियों की कठोर आलोचना की गई। कुछ लोगों का कहना है कि हरिऔध जी ने मुहाविरों का चमत्कार

जिन्होंने तथा उद्देश्यों द्वारा समाज सुधार करने की धुन सवार होने के कारण इन काव्यों की सृष्टि की। ऐसा समझना उचित नहीं। हरिऔध जी को निश्चय ही इन कृतियों के रचने में मानसिक शक्ति का प्रयोग अधिक करना पड़ा परन्तु उनकी साहित्यिकता नष्ट नहीं हुई। चुटीलापन, मिठास तथा साहित्यिक सौन्दर्य जो मुहावरों का प्राण है, आदि का निर्वाह बड़ी ही सफलता पूर्वक उन्होंने किया है। स्थायी साहित्य की यथेष्ट सामग्री 'बोलचाल' में प्राप्त होती है किन्तु 'चोखे चौपदों' में उसका बाहुल्य है। काव्य कला की दृष्टि से चुभते चौपदे तथा बोलचाल, की अपेक्षा चोखे चौपदों का स्थान सर्वोच्च है। चोखे चौपदों में शक्ति, विचारों का सौंदर्य, अलंकारों की स्वाभाविकता एवं रसों की छटा के हृदय-ग्राही चित्र उपस्थित हो गए हैं।

द्विवेदी युग में हरिऔध जी ने इतनी सुगमता से विजातीय शैली को हिन्दी का रूप देकर और उसे अपना कर साहित्य की अद्वितीय सम्पत्ति बना डाला। अतः इन मुहाविरेदार कृतियों का साहित्य-निर्माण की दृष्टि से विशिष्ट स्थान है।

खड़ी बोली की इन रचनाओं के अतिरिक्त ब्रजभाषा की रचनाएँ भी हैं जो हरिऔध जी ने द्विवेदी युग में रची थी। 'रसकलस' ऐसा ही काव्य ग्रन्थ है। अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ काल में उनका जो ब्रजभाषा के ऊपर झुकाव था वह भारतेन्दु से परिष्कृत होता हुआ द्विवेदी काल में अपने चरम विकास पर पहुँच गया, अतः ब्रजभाषा के हरिऔध को हम उस शान्तियुग में भी जीवित पाते हैं। द्विवेदी काल में हम हरिऔध जी के काव्य-जीवन को तीन पृथक-पृथक श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। १—प्रियप्रवास के हरिऔध, २—चौपदों के हरिऔध और ३—रसकलस के हरिऔध। इन तीनों रूपों के हरिऔध एक दूसरे से भिन्न हैं। अपने इन तीनों रूपों पर उनका समानाधिकार है। उनकी प्रतिभा का स्रोत एक ही कवि-हृदय से प्रस्फुटित होकर तीन दिशाओं की ओर उन्मुख हो गया है। इन तीनों

रूपों में हरिऔध का पृथक-पृथक व्यक्तित्व है। 'प्रियप्रवास' में वे एक भावुक कवि हैं तो चौपदों में उपदेशक और रसकलश में काव्य-रीतियों के मर्मज्ञ। उनकी प्रतिभा तथा कवित्व-शक्ति आश्चर्यजनक है।

'रस-कलस' हरिऔध की एक अनुपम रीति-कृति है। इसमें हरिऔध की प्रतिभा दो रूपों में विभक्त हो गयी है। १—परम्परा गत और २—मौलिक। रीति-कालीन परम्परा की जो विशेषताएँ रस गंगाधर धार, साहित्य-दर्पणकार, बिहारी तथा केशव आदि कवियों की रचनाओं में लक्षित होती हैं, वह सब हमें हरिऔध जी के रीति ग्रन्थों में मिल जाती हैं। कलापक्षःतथा भाव-पक्ष दोनों का ही हरिऔध ने अपने काव्य ग्रन्थों में समन्वय किया है। अलँकार तथा रसों से उन्होंने न तो भाषा सौष्ठव पर वार किया है और न विषय के संतुलन पर आँच लगने दी है। प्रत्येक वस्तु का उन्होंने यथोचित प्रयोग किया है। प्राचीन ग्रन्थों में शृङ्गार के प्रति रीतिकार की जैसी अभिरुचि दिखाई देती है वैसी अन्य रसों के प्रति नहीं, परन्तु हरिऔध जी इस दोष से मुक्त हैं। इसका प्रमाण रसकलश है।

ऊपर हमने हरिऔध की रीति कालीन परम्परा के विषय में विचार किया अब हम उनकी मौलिकत्व पर एक विहँगम दृष्टि डालेंगे। हरिऔध ने नायिका भेद वर्णन में कुछ ऐसी नायिकाओं की सृष्टि की है जो साहित्य में विशेष महत्व रखती हैं। लोक सेविका, निजतानुरागिनी, जन्म-भूमि प्रेमिका, देश प्रेमिका, धर्म-प्रेमिका, जाति प्रेमिका तथा परिवार प्रेमिका आदि उनकी नायिकाएँ हैं। इन नायिकाओं की कल्पना के पीछे हमे हरिऔध जी की सामाजिक, राष्ट्रीय, जातीय धार्मिक तथा उपदेशात्मक मनोवृत्तियाँ अन्तर्हित जान पड़ती हैं। यही कारण है कि इन नायिकाओं के वर्णन में रसानुभूति का अभाव है। ऋतु वर्णन में भी हमें उनके काव्य प्रतिभा के दर्शन होते हैं। दोहों और धनाक्षरी छन्दों के इस ग्रन्थ का

मौलिकता की दृष्टि से विशिष्ट स्थान है। नारी और पुरुष के स्वाभाविक आकर्षण का इस ग्रन्थ में हरिऔध जी ने सजीव चित्र खींचा है।

क्रमानुसार हरिऔध जी में परिवर्तन तथा विकास हुआ। पारिजात उनका स्फुट काव्य है। इसकी रचना यद्यपि द्विवेदी युग में हुई थी किन्तु फिर भी इसमें नवीन युग की झलक दीख पड़ती है। इसमें उनकी दार्शनिक रचनाओं का सँकलन है जिनसे उनकी आध्यात्मिकता का पता चलता है। मासिक पत्रिकाओं में उस समय जब हरिऔध जी की रचनाएँ निकलती थीं तो उनमें कुछ न कुछ भिन्नता तथा नवीनता अवश्य होती थी। देखिए—

> क्या समझ नहीं सकती हूँ,
> प्रियतम, मैं मर्म तुम्हारा।
> पर व्यथित हृदय में बहती,
> क्या रुके प्रेम की धारा।

इस शैली पर प्रसाद के आँसुओं की छाप दीख पड़ती है। अकल्पनीय की कल्पना, नवीन शैली के साथ गेय-गान आदि 'पारि—जात' में सुन्दर रचनाएँ हैं। यही रचनाएँ हरिऔध जी को आजकल के प्रमुख कवियों के साथ में सर्वोच्च आसन देती हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हरिऔध जी की काव्य-प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उनकी रचनाओं में रीतिकाल, भारतेन्दु काल, द्विवेदी काल तथा आधुनिक-काल आदि सब का पुट मिलता है। किन्तु द्विवेदी युग में ही हरि-औध पूर्ण रूप से विकसित हुए थे। उनकी इस युग की रचनाओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। १—भावात्मक, २—उद्गारात्मक और ३—उपदेशात्मक। भावात्मक रचनाओं में हरिऔध जी उच्चकोटि के कवि हैं। सन्ध्या की वेला कृष्ण गौ चरा कर लौट रहे हैं। उस समय का सुन्दर वर्णन देखिए—

> कुंकुम-शोभित गोरज बीच से
> निकलते ब्रज-वल्लभ यों लसे

छदन ज्यों कर वर्धित कालिमा
विलसता नभ में नलिनीश है।

इन पंक्तियों में उपमा तथा उत्प्रेक्षा के सहारे कवि ने मनोहर छवि का चित्र खींचा है इसमें सजीवता तथा आकर्षण कितना सुन्दर है!

दूसरे प्रकार की रचनाएँ, उद्गारात्म है। माता के हृदय का करुणा-मूलक चित्र देखिए—

प्रिय पति! वह मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है,
दुख-जलनिधि-डूबी का सहारा कहाँ है!
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ,
वह हृदय हमारा नैन-तारा कहाँ है!

माता के हृदय के इन उद्गार में पाषाण को भी मोम की भाँति द्रवित कर देने की क्षमता है। हरिऔध जी ने बड़ी कुशलता से ऐसे मार्मिक चित्र खींचे हैं।

हरिऔध जी की तीसरी प्रकार की रचनाएँ उपदेशात्मक हैं। उपदेशात्मक प्रवृत्ति हरिऔध जी में अधिक है। उनके समस्त ग्रन्थों में मानव के लिए कुछ न कुछ उपदेशात्मक सामग्री का समावेश अवश्य रहता है। दार्शनिक तत्वों के निरूपण तथा भावों के वर्णन में यह प्रवृत्ति उनके विकास में बाधक सिद्ध हुई है। इसका एकमात्र कारण हरिऔध जी में लोक-संग्रह की भावना का बाहुल्य होना है। वह देश की समस्याओं तथा समाज से बड़े प्रभावित दीख पड़ते हैं। वह इन सबको अपने काव्य से पृथक न कर सके हैं। उनके काव्य में किसी न किसी समस्या का प्रतिपादन अवश्य रहता है। 'एक बूँद' का उदाहरण देखिए—

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से,
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी।

सोचने फिर-फिर यही जी में लगी,
आह, क्यों घर छोड़ कर मैं यों बढ़ी ॥
दैव, मेरे भाग्य में है क्या बदा,
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में ।
या जलूँगी गिर अँगारों पर कहीं,
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में ॥

हरिऔध के इस अवतरण में सामाजिक भावना के पीछे उपदेशात्मक प्रवृत्ति अन्तर्हित है । ऐसी रचनाओं में वह उपदेशक मात्र ही रह गये । प्रिय-प्रवास इस दोष से मुक्त नहीं है ।

हरिऔध जी की गीतिधारा—हरिऔध जी गीति लिखने में भारतेन्दु बाबू के प्रतिनिधि थे । भारतेन्दु बाबू सन् १८८२ में हमसे सदा के लिए विदा हो गए थे । उनके निधन के पश्चात् उपाध्याय बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने हिन्दी साहित्य को गीतों की अक्षय विभूति दी । यह गीत, दादरा, ठुमरी, चैता, आदि राग रागनियों में होते थे । हरिऔध जी ने भी कुछ गीतों की रचना की थी । एक उदाहरण देखिए ।

बिगरल मोर करमवाँ नहि जानों कौने करनवाँ ।
घर गाँव छुटल दियार देस छुटल छुटि गैलें सिगरे सजनवाँ ।
खोजलेहुँ कतहूँ न हित हम पावत सब सुख भैलें सपनवाँ ।
घाम नहीं गिनली, बतास नहीं गिनली, सुख सों न कली सयनवाँ ।
मारि—मारि के निज काम सँवरली तबहुँ चपल मन अनवाँ ।
बरस बरस की होरिहु के दिन दुख के भयल समनवाँ ।
तुम बिन को 'हरिऔध' उबारे हे हरि ! विपत हरनवाँ ।

प्रेमघन तथा प्रतापनारायण आदि कवि इन्हीं गीतों द्वारा जनता के हृदय तक पहुँचे थे ।

हरिऔध ने गीत लिखे अवश्य, परन्तु उनके गीतों में वह माधुर्य-

गीत में होना चाहिए। इसका एक कारण था। हरिऔध के गीत व्रजभाषा में होने के कारण गुप्त जी की भाँति रसमय न हो सके। इन्होंने गीत लिखे भी बहुत कम हैं। कुछ भी हो यह मानना पड़ेगा कि हरिऔध जी व्रजभाषा में गीत लिखने में निपुण थे।

महाकाव्यकार के रूप में हरिऔध जी—हम हरिऔध के काव्य पर एक विहंगम दृष्टि डाल चुके। अब हम उनके 'प्रियप्रवास' से यह निर्णय करने का प्रयास करेंगे कि उन्हें महाकाव्य-कार के रूप में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है। प्रिय-प्रवास उनकी वह विभूति है जो अकेले ही उन्हें महाकाव्यकार के उच्च आसन पर आसीन कर देने की क्षमता रखती है। प्रियप्रवास पर हम आगे विचार करेंगे यहाँ इतना ही कह देना काफी है कि हरिऔध जी एक सफल महाकवि भी हैं।

३
हरिऔध और गुप्त जी

हरिऔध जी ने हिन्दी के तीन काल देखे थे। १—भारतेन्दु काल २—द्विवेदी युग, तथा ३—वर्तमान युग। बाबा सुमेरसिंह से प्रभावित होकर भारतेन्दु काल में उन्होंने व्रज भाषा को अपनाया। द्विवेदी युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन से उन्होंने खड़ी बोली को काव्य का माध्यम बना कर अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया किन्तु उन्होंने फिर भी व्रज भाषा का बहिष्कार नहीं किया। नवीन युग में अपनी द्विवेदी कालीन प्रतिभा से उन्होंने स्फुट रचनाएं करके साहित्य-भाण्डार के रत्नों की पूर्ति की। गुप्त जी को अपने पिता से कविता करने की प्रेरणा मिली। उनके पिता रामचरणगुप्त स्वयं व्रज

भाषा के अच्छे कवि थे। परन्तु फिर भी गुप्त जी ने ब्रज भाषा को अपने काव्य का माध्यम न बना कर खड़ी बोली को ही बनाया। अपने कवि-जीवन के आरम्भ काल में उन पर द्विवेदी युग की छाप पड़ चुकी थी। अतः उन्होंने उससे ही प्रभावित होकर खड़ी बोली को अपनाया। गुप्त जी ने भी इस प्रकार अपनी आँखों से हिन्दी काव्य के दो काल देखे। गुप्त जी द्विवेदी काल से अधिक प्रभावित हैं। सच पूछा जाए तो यह काल उनके कवि जीवन का आरम्भिक काल था। हरिऔध जी भी द्विवेदी युग से कम प्रभावित नहीं हुए वरन् उतने ही प्रभावित हुए जितने स्वयं गुप्त जी परन्तु हरिऔध के काव्य पर रीति-परम्परा का भी प्रभाव है। गुप्त जी इस प्रकार के प्रभाव से खाली हैं। उन पर शुद्ध द्विवेदी युग की छाप है।

धार्मिक क्षेत्र में गुप्त जी की अपेक्षा हरिऔध के सिद्धान्त अधिक व्यापक हैं। वह मानवता के रूप में अवतारवाद के मानने वाले हैं। उनके अनुसार—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन' उनके अनुसार मानवता का चरम विकास ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है। वे इसी को अवतारवाद मानते हैं। उनके मतानुसार ईश्वर का साकार रूप नहीं है। इसी भावना से प्रभावान्वित होकर उन्होंने प्रियप्रवास के कृष्ण को महापुरुषों के गुणों से विभूषित किया है। यही वह भावना है जिससे उन की सामाजिक चेतना तथा विश्व-प्रेम की भावना का विकास हुआ है। उनके कृष्ण तथा राधा इसी भावना के प्रतिनिधि हैं। परन्तु गुप्त जी का मत इसके बिल्कुल विपरीत है। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार वह रामोपासक हैं और अवतारवाद के समर्थक हैं। वह साकार राम के उपासक हैं। उनके अनुसार वह राम जो घट-घट वासी है, निर्गुण से सगुण रूप धारण कर के अपनी भक्तवत्सलता का परिचय देता है। उसका उद्देश्य निम्न है—

पथ दिखाने के लिए संसार को।
दूर करने के लिए भू-भार को।

इस भावना के कारण गुप्त जी को भक्त-कवियों के मध्य में आसीन किया जा सकता है। सिक्ख गुरु के शिष्य रहने के कारण हरिऔध जी की विचारधारा पर सन्त कवियों का प्रभाव लक्षित होता है। उनकी साहित्य-साधना सन्त कवियों की साहित्य साधना है। गुप्त जी की समस्त रचनाएँ राम के जीवनादर्श से भरी पड़ी हैं। साकेत में ठीक तुलसीदास का सा स्वर दीख पड़ता है। राष्ट्रीयता से उनके सारे काव्य ओत-प्रोत हैं। गुप्त जी राष्ट्रीय कवि के रूप में ही हमारे सामने आते हैं। हरिऔध जी ने अपने काव्य में सामाजिक प्रवृत्तियों का चित्रण किया है। वे सामाजिक प्रवृत्तियों के कवि कहे जा सकते हैं। गुप्त जी भारत के प्राचीन गौरव के उपासक हैं परन्तु हरिऔधजी नहीं। जहाँ पर हरिऔध जी उपदेशक एवं सुधारक हैं वहाँ गुप्त जी राष्ट्रीय-चेतना के प्राण हैं। इसका कारण आदर्शों एवं परिस्थितियों की भिन्नता है। हरिऔध जी को अध्ययन त्याग कर जीवनोपार्जन के लिए सरकारी नौकरी का आलम्बन करना पड़ा। अत: हरिऔध जी राष्ट्रीय चेतनाओं का स्पष्ट वर्णन करने में असमर्थ थे। ऐसी अवस्था में उनकी सामाजिक भावना राष्ट्रीय भावना से आगे निकल गई। गुप्त जी की राष्ट्रीय भावनाएँ सामाजिक भावनाओं के मध्य में पुष्पित हुई। राष्ट्रीय आन्दोलनों में निरन्तर सहयोग देते रहने के कारण गुप्त जी की राष्ट्रीय-चेतना और भी सजग हो उठी। दोनों काव्यकारों का दृष्टिकोण अपनी जातीयता की समस्याओं के प्रति उदार था।

हरिऔध जी ने गद्य तथा पद्य दोनों में ही सफलता पूर्वक लेखनी चलाई है। उनके उपन्यास और हिन्दी-भाषा तथा साहित्य का विकास उनके गद्य लेखन की प्रतिभा के परिचायक है। इसके अतिरिक्त पद्य में उन्होंने दो महाकाव्य प्रियप्रवास और वैदेही-बनवास भी लिखे। रसकलस में उनका पाण्डित्य छिटका पड़ा है। गुप्त जी ने पद्य के साथ-साथ गद्य को अपनाया अवश्य परन्तु उनका विषय सीमित रहा।

रूप से उन्होंने एक [illegible] तथा छन्द की [illegible] की सृष्टि की। इस क्षेत्र में उन्होंने तीन नाटक भी लिखे हैं। [illegible] कोई भी पुस्तक गुप्त जी ने नहीं लिखी। उनकी कविताएँ पौराणिकता पर आधारित हैं। हरिऔध जी ने भी अपने महाकाव्यों का विषय पौराणिक कथाओं से चुना परन्तु उनमें पौरा-णिकता का समावेश न होने दिया। उन्होंने अपनी कथाओं को मौलिक बना दिया। गुप्त जी ने अपने काव्यों में इस प्रकार का प्रयास नहीं किया है। वे हरिऔध जी की भाँति नवीन आदर्शों की सृष्टि अपनी रचनाओं में नहीं कर सके हैं। हरिऔध जी के महा-काव्यों में सामाजिक चेतना के दर्शन होते हैं और गुप्त जी के काव्य में राष्ट्रीय-चेतना के। हाँ, वादों का प्रभाव अवश्य गुप्त जी पर हरिऔध की अपेक्षा अधिक दीख पड़ता है। वे एक सफल छायावादी तथा रहस्यवादी कवि भी हैं।

अब लीजिए चरित्र-चित्रण की दृष्टि से हरिऔध तथा गुप्त जी को। हरिऔध जी ने दो महाकाव्यों की सृष्टि की है, ऐसा हम पिछले पृष्ठों में बता आए हैं। दोनों ही महाकाव्यों की आधार शिलाएँ पौराणिक गाथाएँ हैं। प्रियप्रवास महाकाव्य राधा तथा कृष्ण को विषय बना कर रचा गया और वैदेही वनवास सीता को। जितनी सफलता हरिऔध जी को राधा का चरित्र चित्रण करने में मिली उतनी मात्रा सीता के चरित्र चित्रण में नहीं। साकेत की उर्मिला लक्ष्मण के विरह में दुखित है परन्तु उसका विरह आशा पूर्ण है। वह जानती है कि उसके प्रियतम निश्चित अवधि समाप्त करके अवश्य लौटेंगे। अतः उसकी विरहानुभूति में वैसी छटपटाहट का समावेश न हो पाया है जैसी राधा की विरह वेदना में। राधा का विरह निराशा जन्य है। उसे कृष्ण के लौट आने की कोई आशा नहीं। वह विचार शीला है। वियोग में ही उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। प्रकृति से अपना नाता जोड़ना चाहती है और उसे सम्पूर्ण प्रकृति

हरिऔध का प्रकृति वर्णन ऐसा नहीं है। उनकी प्रकृति रोती अधिक दीख पड़ती है, हँसती कम। नवीनता की छाया हरिऔध के प्रकृति चित्रण में नहीं है। एक उदाहरण देखिए—

समय था सुनसान निशीथ का,
अटल भूतल में तम राज्य था।
प्रलय काल समान प्रसुप्त हो,
प्रकृति निश्चल, नीरव, शान्त थी॥

दोनों कवियों का तुलनात्मक अध्ययन करने से यही भासित होता है कि गुप्त जी के प्रकृति चित्रण पर नवीन युग की छाप होने से वह हरिऔध जी के प्रकृति चित्रण से श्रेष्ठ बन गया है।

काव्य-कला की दृष्टि से हरिऔध जी गुप्त जी से आगे हैं। उनकी रचनाओं में अलंकार, रस, छन्द आदि स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त किये गए हैं। दोनों महाकवियों के काव्य में स्वतः ही अलंकार, आ गए हैं। हरिऔध जी ने वियोग शृंगार, वात्सल्य और करुण रसों का प्रशंसनीय वर्णन किया है। 'रस-कलस' में सभी रसों का उल्लेख है। भाषा की दृष्टि से उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। गुप्त जी में आचार्यत्व का अभाव है। उनकी भाषा ओजपूर्ण तथा प्रभावशाली है पर यह सब खड़ी बोली में ही। गुप्त जी का खड़ी बोली को छोड़कर ब्रज तथा बोलचाल आदि की भाषा पर बिल्कुल अधिकार नहीं है। गुप्त जी की भाषा शुद्ध साहित्यिक हिन्दी है, न तो उसमें संस्कृत के तत्सम् शब्दों का बाहुल्य है और न उर्दू शब्दों की झड़ी। हरिऔध जी की समता मुहावरों का प्रयोग करने में गुप्त जी नहीं कर सकते। हरिऔध ने संस्कृत वर्णों को अपनाया है और गुप्त जी ने हिन्दी छन्दों को। गुप्त जी गीतिकार भी हैं।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि दोनों ही कलाकार भाषा, भाव और कला की दृष्टि से महान् हैं।

४

हिन्दी साहित्य में हरिऔध जी का स्थान

हरिऔध जी हिंदी के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यकार हैं। उन्होंने उस समय जन्म लिया था जब काव्य का माध्यम ब्रज भाषा थी। इस युग में देश तथा समाज की चेतनाओं के साथ उन्होंने अपनी साहित्यिक धारणायें निश्चित की। बाबा सुमेरसिंह से उन्होंने काव्य-प्रेरणा अवश्य ली किन्तु आगे चलकर उन्होंने अपनी कविता के लिए स्वयं ही पथ निर्माण किया। वह हिन्दी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, बँगाली तथा गुरमुखी आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। वे बड़े ही परिश्रमी तथा अध्ययनशील व्यक्ति थे। सरकारी कार्यों से निवृत होकर अपना शेष समय वह साहित्य-सेवा में व्यतीत करते थे। उन्होंने संस्कृत साहित्य का गहरा अध्ययन किया था। सरकारी नौकरी से अवकाश लेने के पश्चात् उन्होंने अपना सारा समय साहित्य-सेवा मे लगाया। काशी विश्वविद्यालय में अवैतनिक अध्यापक रहकर इन्होंने यहाँ कई छात्रों को इस योग्य बनाया जो हिन्दी की प्रगति के लिए प्रयत्नशील है।

हरिऔध जी ने गद्यकार तथा पद्यकार दोनों के ही रूप में हिन्दी साहित्य-कोष को समृद्ध किया। गद्यकार के रूप में उनकी रचनाएँ दो भागों में बांटी जा सकती है। १—अनूदित रचनाएँ एवं २—मौलिक रचनाएँ। ठेठ हिन्दी का ठाठ, अधखिला फूल एवं हिन्दी भाषा तथा साहित्य उनकी मौलिक रचनाएँ है और वेनिस का बाँका रूपयानविषिल आदि अनूदित रचनाएँ। उनकी मौलिक ...ों में भाषा, शैली परिमार्जित तथा परिष्कृत है जो उनकी ...ोतक है। आलोचनात्मक ग्रन्थों की भूमिका से यह भी

ज्ञात होता है कि सरल तथा क्लिष्ट दोनों ही प्रकार की भाषा लिखने में वह सिद्ध-हस्त हैं।

कवि के रूप में हरिऔध जी की देन महत्त्वपूर्ण है। ब्रज भाषा साहित्य में यद्यपि वे रत्नाकार की समता नहीं कर सकते किन्तु फिर भी उनको ब्रजभाषा काव्य में आचार्यत्व की स्पष्ट झलक मिलती है। रीति-कालीन आचार्यों की परम्परा में वे अन्तिम आचार्य हैं। 'रस-कलस' इसका सजीव प्रमाण है। प्रिय-प्रवास उनकी कीर्ति का प्रकाश-स्तम्भ है। रीति कालीन कवियों ने राधा तथा कृष्ण को अपने काव्य में विलासी चित्रित किया था; मानों इसी अन्याय को हरिऔध ने प्रियप्रवास द्वारा मिटाने का प्रयास किया। इस ग्रंथ में राधा और कृष्ण का लौकिक रूप ही दिखाया गया है। प्रियप्रवास का मुख्य विषय है राधा के प्रेम को ठुकरा कर कृष्ण का मथुरा गमन और उनके वियोग में राधा का समस्त विश्व को कृष्णमय समझ कर उसको उपासना करना। इसी छोटे से विषय पर इस महाकाव्य का चक्र घूमता है। कवि ने इसी सकुचित विषय को बड़ा बना कर इसमें मौलिकता का पुट दे दिया है। उनका दूसरा महाकाव्य है 'वैदेही-वनवास'। लोकापवाद के कारण भगवान् राम ने सीता को जो वन गमन की आज्ञा दी उसका करुणा मूलक वर्णन इस महाकाव्य में है। प्रियप्रवास के समान इस ग्रन्थ में करुण-रस का परिपाक नहीं हुआ है किन्तु फिर भी नारी के सभी आदर्शों का निर्वाह इस ग्रन्थ में हुआ है। कवित्व की दृष्टि से प्रियप्रवास का ही मूल्य अधिक है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त चोखे चौपदे तथा चुभते चौपदे एवं बोलचाल आदि ग्रन्थों का भी निर्माण कवि ने किया है। इनमें भाषा का लालित्य देखने योग्य है। पिछले पृष्ठों में हम इन ग्रन्थों पर विचार कर चुके हैं। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हरिऔध जी प्रियप्रवास एवं वैदेही बनवास में महाकवि हैं अन्य सब में कवि। मानव प्रकृति, बाह्य प्रकृति, भाव पद तथा कला पद आदि की दृष्टि से प्रियप्रवास अनूठा महाकाव्य है। पारिजात में

हरिऔध ने दार्शनिक तत्वों का भी चिंतन किया है। सांसारिकता, अन्तर्जगत्, प्रलय, संयोगवाद, तथा वियोगवाद आदि पर भी उन्होंने अपनी अवस्था के अनुकूल प्रकाश डाला है। हरिऔध जी की प्रतिभा ने मानव जगत का सभी कुछ देखा है और अपनी रुचि के अनुसार उसे कवित्व के फ्रेम में डाल कर सुबोध एवं सरस बनाया है।

भाषा के क्षेत्र में भी उनकी प्रतिभा समान रूप से विकसित हुई है। ब्रज भाषा, सरल हिन्दी, संस्कृत-गर्भित हिन्दी एवं खड़ी बोली आदि सभी को उन्होंने अपनाया है। खड़ी बोली में संस्कृत वृत्तों का प्रयोग सर्व प्रथम उन्होंने ही किया। उनका गद्य साहित्य शुष्कता एवं कर्कशता के दोष से मुक्त है। प्रियप्रवास की भाषा संस्कृत निष्ठ एवं मधुर है। उसमें कवित्व भी पूर्णतया प्राप्त होता है। भाव, भाषा तथा कला के क्षेत्र में उनके प्रयोगों का निजी महत्व है। उनकी कला शुद्ध है।

इन सब विशेषताओं से हम उन्हें हिन्दी के महाकाव्याकाश का चमकता हुआ सूर्य कह सकते हैं।

५

महाकाव्य के लक्षण और प्रियप्रवास

महाकवि हरिऔध ने प्रियप्रवास के मुख-पृष्ठ पर भिन्न-तुकान्त कविता का एक महाकाव्य लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि कवि ने इसे पाठकों के समक्ष एक महाकाव्य के रूप में उपस्थित करने का [illegible] किया है। अत: अब हमें इस महाकाव्य को सत्यता की कसौटी [illegible] का उपक्रम करना पड़ेगा तभी हम सार को बाहर निकालने

में समर्थ हो सकेंगे। संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य विश्वनाथ जी ने महा-काव्य के निम्न लक्षण काव्यदर्पण में दिये हैं—

"सर्ग बद्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्त गुणान्वितः॥
एक वंश भवा भूपाः कुलजा बहवोऽपिवा।
शृङ्गार वीर शान्तानामें कोऽङ्गो रस इष्यते॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक-संधयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा वा सज्जनाश्रयम्॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकञ्च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनाँ सताँ च गुण कीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः॥
नातिस्वल्पा नाति दीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह।
नाना वृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
संध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोष ध्वान्तवासरः॥
प्रातर्मध्याह्न मृगयाशैलर्तु वन सागराः।
सँभोग विप्रलम्भौ च मुनि स्वर्ग पुराध्वराः॥
रण प्रयाणोपयम मन्त्र पुत्रोदयादयः।
वर्णनीया यथायोगँ साँगोपांगा अमी इह॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्यवा।
नामास्य, सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु॥१

१—महाकाव्य सर्ग बद्ध होना चाहिए। उसमें आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए।

नोट—१ काव्यदर्पण—आचार्य विश्वनाथ

२—उसका नायक कोई सद्वंशज, प्रसिद्ध, ऐतिहासिक, धीरोदत्त होना चाहिए।

३—शृंगार, वीर और शान्त में से कोई सा एक रस प्रधान होना चाहिए।

४—उसकी ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथा का विकास नाटकीय ढंग पर हो।

५—धर्मार्थ-काम, मोक्ष में से किसी एक का सिद्धि-दाता हो।

६—सर्गों में विभिन्न छन्द होना चाहिए, तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन भी आवश्यक है।

७—प्रकृति-वर्णन, विविध दृश्य वर्णन, संयोग, वियोग, युद्ध, विवाह आदि का विषद वर्णन आवश्यक है।

८—महाकाव्य का नाम करण, नायक, कथा प्रसँग, अथवा कवि के नाम पर होना चाहिए।

संक्षेप में कहा जा सकता है "स्थूल जीवन की विषद व्याख्या ही एक सफल महाकाव्य का प्रमुख लक्षण होता है।"

उपर्युक्त लक्षण प्रियप्रवास में स्पष्ट दीख पड़ता है। इसमें सत्रह सर्ग हैं। सात प्रकार के छन्द द्रुतविलम्बित, शार्दूल विक्रीड़ित, वंशस्थ, बसंततिलका, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, मालिनी का प्रयोग इस ग्रन्थ में किया गया है। इस महाकाव्य के नायक जगत-प्रसिद्ध राधा तथा कृष्ण है। वन, नदी, गिरि, ऋतु तथा तालाब आदि का इसमें सजीव वर्णन है। शृंगार रस इस ग्रन्थ में प्रधान है। करुण तथा शान्त रस का परिपाक भी बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। वीर भयानक आदि रस भी गौड़ रूप में प्राप्त होते हैं। इसकी भाषा संस्कृत-गर्भित होते हुए भी सरल तथा मधुर है। समाज तथा जीवन की अनेक दशाओं का चित्रण किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपाध्याय जी ने इसे

एक सफल महाकाव्य का रूप देने का प्रयास किया है। वास्तव में महाकाव्य की लक्षण-रेखा के अनुसार प्रियप्रवास में महाकाव्यत्व के सभी लक्षण प्राप्त होते हैं किन्तु आन्तरिक दृष्टि से विचार करने पर हमें प्रियप्रवास को एक सफल महाकाव्य ही क्या वरन् एक सफल प्रबन्ध काव्य कहने में भी सकोच होता है। इस काव्य में घटना-क्रम बिल्कुल शिथिल सा है। दूसरे शब्दों में यूं कहिए कि है ही नहीं। दो ही घटनाओं पर यह काव्य आधारित है। कृष्ण का मथुरा-गमन तथा उद्धव का ब्रज-आगमन, इन्हीं दो घटनाओं पर यह महाकाव्य स्थिर है। यह स्थिर ही है गति-शील नहीं। मार्मिक स्थलों की पहिचान भी महाकाव्य में अति आवश्यक है। मार्मिक स्थलों का प्रचुरता से महाकाव्य में वर्णन होना चाहिए। किन्तु प्रियप्रवास में कोई भी विशेष स्थल नहीं। फिर किस प्रकार उसकी पहिचान की जाए। उसमें कृष्ण के बाल रूप को समग्रतया प्रदान करने की चेष्टा अवश्य की गई है किन्तु उसका भी पात्रों द्वारा वर्णन करा दिया जाता है। उसका प्रबन्ध काव्य के मूल कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि कोई गोप-गोपी किसी घटना को छोड़ भी जाते, तो कुछ कहने का अवसर न था। किसी एक घटना को ही नहीं यदि सप्तम के पश्चात् के एक दो सर्ग को भी छोड़ दिया जाए तो रस संचार या कथा-प्रवाह में कोई शिथिलता आती नहीं जान पड़ती। घटनाओं के वर्णन मात्र को क्या महाकाव्य कहा जा सकता है ? नहीं, महाकाव्य में एक क्रम-बद्धता एवं संगठित संगीत भी अवश्य होनी चाहिए। इस बात को दृष्टि-कोण में रखते हुए *प्रियप्रवास एक पूर्ण प्रबन्ध काव्य भी नहीं ठहरता।* आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का प्रियप्रवास के विषय में मत है—"प्रियप्रवास की कथा-वस्तु एक महाकाव्य क्या अच्छे प्रबन्ध काव्य के लिए भी अपर्याप्त है। अतः प्रबन्धकाव्य के सब अवयव इसमें कहाँ मिल सकते हैं। उपाध्याय जी ने इसे स्वयं भी महाकाव्य कहने में संकोच किया है

इस उद्देश्य से लिखा गया है कि इसको देख कर हिन्दी-साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ सुकवियों और सुलेखकों का ध्यान इस त्रुटि के निवारण करने की ओर अग्रसर हो, आकर्षित हो।"

इस प्रकार उपाध्याय जी ने स्वयं इसे महाकाव्य-भास ही बताया है।

इस सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है। प्रियप्रवास के महत्व में महाकाव्य न होने से कोई अन्तर नहीं लगता। इसका प्रत्येक सर्ग रस-पूर्ण है। उसमें आरम्भ से अन्त तक रस का निर्मल प्रवाह है। पाठक उसमें आत्म विभोर हो जाता है।

संक्षेप में हम प्रियप्रवास को महाकाव्य नहीं कह सकते। यह केवल महाकाव्य-भास ही है।

६

हरिऔध सुधारक रूप में

महाकवि हरिऔध जी परमास्तिक भगवान के उपासक थे। वे सनातन-धर्मी विचारों से ओतप्रोत थे। वह गुप्त जी की भाँति राम, कृष्ण के अवतारों को परब्रह्म रूप में मानते थे, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रियप्रवास में हरिऔध जी ने कहीं भी कृष्ण को अतिमानव की ओर नहीं झुकने दिया है। उनके कृष्ण अत्यन्त अलौकिक और दिव्य कार्य करते हुए मानव हृदय के लिए अस्वाभाविक नहीं हो जाते। जिन घटनाओं के सहारे भावुक भक्त कवि श्री कृष्ण की अलौकिकता का प्रतिपादन कर उन्हें परब्रह्म की पदवी पर पहुँचाने का प्रयास करते हैं उपाध्याय जी ने अपनी कल्पना एवं प्रतिभा के ऊपर उन अलौकिक व असम्भव सी दिखाई

देनेवाली घटनाओं को एक सर्वथा स्वाभाविक और विश्वास का रूप दे दिया है। जैसे भक्तों का विश्वास है कि श्री कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत पृथ्वी से अपने हाथ पर उठा लिया था और उस भयंकर प्रलय-कालीन वर्षा से व्रज के गोपों की रक्षा की थी। इस घटना पर कोई भी प्रतिभाशाली तार्किक मस्तिष्कवाला व्यक्ति विश्वास नहीं कर सकता, चाहे भक्त हृदय भले ही विश्वास कर लें। उपाध्याय जी यद्यपि भक्त थे, किन्तु फिर भी उन्होंने इस घटना को ऐसा चित्रित नहीं किया है। उन्होंने अपने प्रियप्रवास में श्री कृष्ण के विषय में कहा है कि उन्होंने भयंकर वर्षा के कारण व्याकुल व्रज-वासियों को बड़े धैर्य व साहस के साथ गोवर्धन पर्वत के ऊंचे स्थान पर पहुँचाया और उनकी रक्षा की। इस कार्य में उन्होंने दिन रात एक कर दिया। कृष्ण और बलराम ने अपने दिव्य-नेतृत्व के बल पर लोगों को उस भयंकर बाढ़ में बहने से बचा लिया। फिर भी उन्होंने गोवर्धन उठा लेने के प्रवाद का भक्तों की भाँति समर्थन किया है। देखिए—

लख अपार-प्रसार-गिरीन्द्र में, व्रज-धराधिप के पुत्र का,
सकल लोग लगे कहने उसे, रख लिया उंगली पर श्याम ने।

हरिऔध जी ने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर दावानल के प्रवाद को भी इसी प्रकार स्वाभाविकता दी है।

यह सब कुछ होने हुए भी कुछ आलोचक उनकी भक्ति में अलौकिकता का आरोप करते हैं—

फणीश शीशोपरि राजिता रही, सुमूर्ति शोभामयी श्री मुकुन्द की।

अथवा

अहीश को नाथ विचित्र रीति से, स्वहस्त में थे वरडोर को लिए,
बजा रहे थे मुरली मुहुर्मुहः प्रबोधिनी मुग्धकरी.........................

यदि सत्यता की कसौटी पर उपर्युक्त दोहे को कहा जाए तो सन्देह होना अस्वाभाविक नहीं। कोई व्यक्ति साँप के फन पर खड़ा होकर

वंशी नहीं बजा सकता, यह सत्य है। परन्तु सत्य में थोड़ा बहुत परिवर्तन करने का अधिकार प्रत्येक कवि को रहता है, उसे छीना नहीं जा सकता। यदि इस अधिकार को कवि से छीन लिया जाए तो उसका काव्य, काव्य न रह कर इतिहास बन जायेगा। कालीदह में कृष्ण का नाग-नागों को भगा देना यह कथन तो इतिहास ही होगा। अब इस पर अत्युक्ति का पुट लगा देने से अवश्य ही इसके सौन्दर्य में वृद्धि होगी। इस प्रकार छोटी-छोटी बातों से यह कहना सर्वथ अलौकिक घटनाओं को लौकिक रूप देने में समर्थ नहीं हो सके कोई विशेष महत्त्व-शील नहीं है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। प्राचीन महाकाव्यों में तो कुम्भ-करण के छः मास तक सुप्तावस्था में रहने की बात को पाठक सहन कर लेता है। किन्तु आधुनिक भक्त कवि के मुँह से विज्ञान-विरुद्ध बात सुनने की वह आशा नहीं करता अतः प्रत्येक कवि को अपने काव्य के नायक के लिए यथासम्भव स्वाभाविकता का रूप देना होता है। हरिऔध जी भी इसी भक्ति-भावना से प्रभावित दीख पड़ते हैं।

इसी युग की भावना से प्रेरित होकर हरिऔध जी ने अपने कृष्ण को एक अलौकिक महापुरुष के रूप में ही अंकित किया है। वे चाहते तो अपने कृष्ण में इष्टदेव तथा परब्रह्म के गुणों का भी समावेश कर सकते थे किन्तु उन्होंने गुप्त जी की भांति ऐसा करना उचित न समझा। गुप्त जी ने अपने राम को स्वाभाविक आधुनिक युग का प्रतिनिधित्व करने वाला तथा साथ ही साथ परब्रह्म रहने दिया है। उनके राम में परब्रह्म तथा आधुनिक विचारों के महापुरुष का सामंजस्य हुआ है इसके विपरीत हरिऔध जी के कृष्ण एक महापुरुष एवं पथ-प्रदर्शक ही हैं। प्रियप्रवास से ऐसा भास होता है कि मध्य युग के कवियों के द्वारा कृष्ण के रूप की जो विकृति हुई उपाध्याय जी ने उसी का निराकरण इस ग्रन्थ में किया है। आधुनिक युग का कोई सुधारक कृष्ण का रूप इतना उज्ज्वल अंकित नहीं कर सकता।

अतः हरिऔध जी भक्त की अपेक्षा सुधारक ही अधिक हैं। उनकी भक्ति-भावना सुधारवाद में परिणत हो गयी है।

७
प्रियप्रवास में नारी चित्रण

प्रियप्रवास में नारी के दो रूप प्राप्त होते हैं। एक माता का और दूसरा प्रेमिका का। अब हम इन दोनों पर विचार करेंगे।

यशोदा

यशोदा—प्रियप्रवास में यशोदा का बड़ा ही अच्छा मर्म्मस्पर्शी चित्र अंकित किया गया है। उसकी हृदय वेदना का अनुमान करना सरल नहीं। आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं उसकी दशा का, जिसका सर्वस्व लुट गया हो। यशोदा न तो लोक-हित की ही भावना से ओत-प्रोत थी और न जगत-हित ही जानती थी। वह तो एक गाँव के समान सीधी-सादी माता है जिसे कृष्ण के अतिरिक्त और किसी से तात्पर्य नहीं। कृष्ण को लेने के लिये जब अक्रूर आया तो उसका कोमल हृदय माँ होने के कारण भाँति-भाँति की शंकाओं से काँप उठा। बहुत सोचने के पश्चात् उसने कृष्ण को मथुरा भेजा। मथुरा भेजते समय उसने अपने पति को कृष्ण के विषय में खूब समझाया। यथा—

"सब पथ कठिनाई नाथ हैं जानते ही।
अब तक न कहीं भी लाड़िले हैं सिधारे।
मधुर फल खिलाना दृश्य नाना दिखाना।
कुछ पथ दुख मेरे बालकों को न होवे।

मार पान लगाने आदिकों को न देंगे।
दिनकर किरणों की ताप से भी बचाना।
यदि उचित जँचे तो छाँह में भी बिठाना।
मुख सरसिज ऐसा म्लान होने न पावे।

विमल जल मँगाना देख प्यासा पिलाना।
कुछ क्षुधित हुए ही व्यंजनों को खिलाना।
दिन वदन सुतों का देखते ही बिताना।
विलसित अधरों को सूखने भी न देना।"

ऐसी चिन्तिता है माता अपने पुत्र के सुख के लिए ! माता यशोदा को दो दिन के पुत्र-वियोग के लिए इतनी अधीरता है किन्तु उनका बेटा कृष्ण अब समय की परिस्थितियों ने एक अनिश्चित काल के लिए उनका अंक सूना कर गया। नन्द को अकेला लौटा देखकर कितनी व्यथित होकर पूछती हैं—

"प्रिय-पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ?
दुख जलधिनि मग्ना का सहारा कहाँ है ?
अब तक जिसको मैं देख के जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नेत्र तारा कहाँ है ॥

मुझ विजित जरा का एक आधार जो है।
वह परम अनूठा रत्न - सर्वस्व मेरा ?
धन मुझ निर्धनी का लोचनों का उजाला।
सजल जलद की सी कान्तिवाला कहाँ है ?

पल-पल जिसके मैं पँथ को देखती थी।
निशि दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती ॥
उर पर जिसके है सोहती मुक्त माला।
वह नव नलिनी से नेत्र वाला कहाँ है ?

प्रति दिन जिसको मैं अंक में नाथ लेके।
विधि-लिखित कुअंकों की क्रिया कीलती थी॥
अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला-निराला।
वह किशलय के-से अँग वाला कहाँ है ?

वर-वदन विलोके फुल्ल-अँभोज-ऐसा।
करतल-गत होता व्योम सा चन्द्रमा था॥
मृदु-रव जिसका है रक्त सूखी नसों का।
वह मधुमय-कारी मानसों का कहां है ?

व्यक्ति ममत्व की भावना के कारण निराशा की परिस्थिति में भी आशा की झलक देखता रहता है। इसके कारण वह असम्भव को सम्भव में परिणत करने का प्रयास करता है। इसके द्वारा वह रेत की दीवार बना लेना चाहता है। यशोधरा की भी ठीक यही अवस्था है। अपनी इस अवस्था में वह कितनी करुण एवं वेदनामयी हो गयी है—

"प्रति दिन वह आके द्वार पै बैठती थी।
पथ-दिशि लखते ही वार को थी बिताती॥
यदि पथिक दिखाता तो यही पूछती थी।
प्रिय-सुत गृह आता क्या कहीं था दिखाया॥

अति अनुपम मेवे औ रसीले फलों को।
वह मधुर मिठाई दुग्ध को व्यंजनों को॥
पथ श्रम निज प्यारे पुत्र का मोचने को।
वह नित रखती थी भाजनों में सजा के॥

× × ×

प्रति दिन कितने ही देवता थी मनाती।
बहु यजन कराती विप्र के वृन्द से थी॥

नित पर पर नाना ज्योतिषी थी बुलाती।
निज प्रिय सुत आना पूछने को यशोदा॥

सदन ढिग कहीं जो पत्र भी डोलता था।
निज श्रवण उठाती थी समुत्कण्ठिता हो॥
कुछ रज उठती जो पंथ के मध्य यों ही।
बन अयुत दगी तो वे उसे देखती थीं॥

गृह दिशि यदि कोई शीघ्रता साथ आता।
तब उभय करों में थामती वे कलेजा॥
जब वह दिखलाता दूसरी ओर जाता।
तब हृदय करों में ढांपती थी दृगों को॥

मधुवन दिशि से वे तीव्रता साथ आता।
यदि नभ तल में वो देख पाती पखेरू॥
उस पर कुछ ऐसी दृष्टि तो डालती थी।
लख कर जिसको था मग्न होता कलेजा॥

काफी समय व्यतीत हो गया परन्तु कृष्ण अब तक व्रज न आए। आज उद्धव द्वारा उन्होंने सन्देश भेजा है। यशोदा अपने दुःख की ओर दृष्टिपात न करके उद्धव से कृष्ण की कुशल पूछती है। यथा—

"मेरे प्यारे सकुशल सुखी और सानन्द तो हैं?
कोई चिन्ता मलिन उनको तो नहीं बनाती?
ऊधो छाती बदन पर है म्लानता भी नहीं तो?
हो जाती है, हृदय-तल में तो नहीं वेदनाएँ?

मीठे मेवे मृदुल नवनी और पकवान्न नाना।
उत्कण्ठा के सहित सुत को कौन होगी खिलाती॥
प्रातः पीता सुपय कजरी गाय का चाव से था।
हा! पाता है न अब उसको प्राण प्यारा हमारा॥

सकोगी है अति सरल है धीर है ज्ञान तेरा।
अच्छा होतीं अतिनत उसको मानने में सदा थीं ॥
जैसे मेरे सुमुख सुत के अंक में मैं खिलाती।
हा ! वैसे ही अब निज खिला कौन कांता सकेगी ॥

इस प्रकार यशोदा को अपने पुत्र के सुखी होने का विश्वास नहीं
ता। उन्हें ऐसा भास होता है कि उनके (यशोदा) अतिरिक्त अन्य
ोई उनके पुत्र को प्रसन्न नहीं रख सकता। निम्न पंक्तियों में हरि-
औध जी ने कैसा मार्मिक वर्णन किया है माता की वेदना का।
दुखिया माता के उद्गार सुनिए—

"मेरी आशा नवल लतिका थी बड़ी ही मनोज्ञा।
नीले पत्ते सकल उसके नीलमों के बने थे ॥
हीरे के थे कुसुम फल के लाल गोमेदकों के।
पत्रों द्वारा रचित उसकी सुन्दरी डंठियाँ थी ॥
उद्विग्ना हो विपुल विकला क्यों न सो धेनु होगी।
प्यारा लैरू विलग जिसकी आँख से हो गया है ॥
क्यों वैसे व्यथित फणि सो जी सकेगा बता दो।
ज्योतिर्न्मयी रतन जिसके शीश का खो गया है ॥
छीना जावे लकुट न कभी वृद्धता में किसी का।
ऊधो कोई न कल-छल से लाल ले ले किसी का ॥
पूँजी कोई जनम भर की गांठ से खो न देवे।
सोने का भी सदन न बिना दीप के हो किसी का ॥
पत्रों-पुष्पों-रहित विटपी विश्व में हो न कोई।
कैसी ही हो सरस सरिता वारि शून्या न होवे ॥
ऊधो सीपी सदृश न कभी भाग फूटे किसी का।
मोती ऐसा रतन अपना आह ! कोई न खोवे" ॥

उपर्युक्त पद्यखण्ड में कितना हृदयभेदी संकेत किया

है। यशोदा इसको और अधिक स्पष्ट कर देना चाहती है। वह कहती है—

"हो जाती हूँ मृतक, सुनती हाय जो यों कभी हूँ।
होता जाता मम तनय भी अन्य का लाड़िला है।"

यशोदा कृष्ण को एक बार पुनः ब्रज में देखना चाहती है। यह उसकी हार्दिक अभिलाषा है—

"जो आँखें हैं उमग खुलती ढूँढ़ती श्याम को हैं।
लौ कानों को मुरलिधर की तान ही की लगी है॥
होती सी है यह ध्वनि सदा गात रोमावली में।
मेरा प्यारा सुवन ब्रज में एकदा और आवे"॥

ज्ञात नहीं माता यशोदा की यह अभिलाषा पूरी होगी या नहीं। कृष्ण पुनः ब्रज आ सकेंगे या नहीं। यद्यपि यह निश्चित नहीं; तो भी माता को कृष्ण के लौटने की आशा है ही जिससे उसके जीवन की रक्षा हो रही है। देखिए—

"लोहू मेरे युगल दृग से अश्रु की ठौर आता।
रोएँ रोएँ सकल तन के दग्ध हो क्षार होते॥
आशा होती न यदि मुझको श्याम के लौटने की।
मेरा सूखा हृदय तो सैकड़ों खण्ड होता"॥

माता यशोदा परिस्थिति की गम्भीरता से पूर्णतया अवगत है। मन ही मन वह कृष्ण पर देवकी का अधिकार होना स्वीकार सा करती दीख पड़ती हैं। निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

"कैसे भूली सरस खीन सी प्रीति की गोपकाएँ।
कैसे भूले सुहृदपन के सेतु से गोप-ग्वाले॥
शान्ता धीरा मधुर हृदया प्रेम रूपा रसज्ञा।
कैसे भूली प्रणय-प्रतिमा राधिका मोह मग्ना॥

कैसे वृन्दा विपिन बिसरा क्यों लता वेलि भूली।
कैसे जी से उतर सिगरी कुञ्ज पुंजे गयी हैं॥
कैसे फूले विपुल फल से नम्र भूजात भूले।
कैसे भूला विकच तरु सो भानुजा कूल वाला"॥

कृष्ण किसके लड़के हैं? इसके उत्तर में जहाँ वह (यशोदा) अपनी टेक पर स्थिर रहती है वहाँ कृष्ण के प्रति ब्रज के समस्त बन्धनों से उसे निराशा भी हुई हैं। इसी कारण यशोदा ने उक्त पंक्तियों में उद्धव से ऐसे प्रश्न किए थे।

उद्धव के पास यशोधरा के प्रश्नों का समाधान करने के लिए कोई सामग्री नहीं। ऐसी अवस्था में माता यशोदा कब तक कृष्ण को 'मेरा सुधन' कह कर अपने हृदय को समझा सकेगी। अब यशोदा स्वयं को कृष्ण की धाई ही कहला कर सन्तुष्ट है किन्तु उस समय जब कि कृष्ण पुनः ब्रज आकर अपने दर्शन दे जाए। यह भावना उसे देवकी के प्रति कितना उदार बना देती है—

"मैं रोती हूँ हृदय अपना कूटती हूँ सदा ही।
हा! ऐसी ही व्यथित अब क्यों देवकी को करूंगी॥
प्यारे जीवें प्रमुदित रहें औ बने भी उन्हीं के।
धाई नाते वदन दिखला जाएं बारेक और"।

माता यशोदा की दशा कितनी करुणा-जनक है। वह तो दुखी है ही कृष्ण वियोग में, अब अपनी तरह वह देवकी को उससे कृष्ण छीन कर दुःखी क्यों करे? अतः वह स्वयं को कृष्ण की धाय ही बना लेती है। कैसी त्याग-वृत्ति है इसमें माता की। वह एक आदर्श माँ है जो अपने बेटे को अपने से दूर रहते हुए भी सुखी देखना चाहती है। कृष्ण के दुःख से दुःखी और उसके सुख से वह स्वयं को सुखी समझती है। संक्षेप में, हम उसे भारतीयता, करुणा, त्याग वृत्ति आदि की भावनाओं से ओतप्रोत देखते हैं।

राधा

राधा—प्रियप्रवास में एक और नारी चित्र प्राप्त होता है—वह है कृष्ण की प्रेयसी राधा का। यशोदा की अपेक्षा राधा का महत्त्व प्रियप्रवास में अधिक है। कृष्ण यदि प्रियप्रवास के प्राण है तो राधा उसकी आत्मा है! यदि काव्य में राधा का अभाव होता तो उसकी सारी सुगन्धि कर्पूर की भांति वायु में मिल जाती। इसमें सन्देह नहीं कि यशोदा के विलाप से माता की अन्तर्वेदना का भावपूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। वृद्ध नन्द की दशा का भी स्वात: ही हमें अनुमान हो जाता है। जितना ही नन्द पुरुषोचित नियन्त्रण दिखाते हैं उतनी ही हमारी अधीरता में वृद्धि होती है। इसमें भी सन्देह नहीं कि यदि प्रियप्रवास से गोप-गोपियों को निकाल दें तो उसका महत्त्व बहुत घट जायेगा। काव्य की शोभा को बनाए रखने के लिए नन्द, यशोदा, गोप, गोपी आदि सभी आवश्यक हैं, किन्तु यह सब शोभा बढ़ाने मात्र के लिए ही आवश्यक हैं, काव्य का प्राण यह नहीं हैं।

प्रियप्रवास क प्राण हैं श्री कृष्ण और राधा है उसकी आत्मा। काव्य के नायक हैं कृष्ण और नायिका राधा। हो सकता ह कि कृष्ण से अन्य गोपियाँ राधा की अपेक्षा अधिक प्रेम करती हों पर कृष्ण राधा पर ही आकृष्ट थे। काव्य का गहराई के साथ अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यह समस्त कथा केवल एक विस्तारशील तथा प्रगतिशील व्यक्तित्व के विकास के कारण पैदा होने वाले प्रथम व्यक्तित्व की प्रबलता के कारण अन्य के भी उसके साथ लपेट में आ जाने वाले मार्ग में प्रवृत्ति होने का दिग्दर्शन मात्र है। अत: राधा के विषय में विषद समीक्षा करने की आवश्यकता है।

राधा में प्रेमांकुर किस प्रकार उत्पन्न हुआ। देखिये—

जब नितान्त अबोध मुकुन्द थे।

यह सखी वृषभानु निकेत में।
अति समादर साथ गृहीत थे॥
छविवती दुहिता वृषभानु की।
निपट थी जिस भाँति पयोमुखी॥
सभी वह नन्दभूप कुटुम्ब की।
परम कौतुक पुत्तलिका रही॥
वह अलौकिक बालक-बालिका।
जब हुए जल-क्रीड़न योग्य थे॥
परम तन्मय हो बहु प्रेम में।
सब परस्पर थे वह खेलते॥
कलित क्रीड़न मे इनके कभी।
ललित हो उठता गृह नन्द का॥
उमड़ सी पड़ती छवि थी कभी।
वर निकेतन के वृषभानु के"॥

राधा के रूप सौन्दर्य तथा सहृदयता की एक झाँकी देखिए —

"रूपोद्यान प्रफुल्ल-प्राय-कलिका राकेन्दु-बिम्बानना।
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली॥
शोभा वारिधि की अमूल्य-मणि सी लावण्य लीला-मयी।
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी॥
फूले कंज समान मंजु दृगता थी मत्तता कारिणी।
सोने-सी कमनीय कान्ति तन की थी दृष्टि-उन्मेषिनी॥
राधा की मुसकान की मधुरता थी मुग्ध मूर्ति सी।
काली कुंचित लम्बमान अलकें थीं मानसो-मादिनी॥
नाना-भाव विभाव-हाव कुशला आमोद आपूरिता।
लीला लोल कटाक्ष पात निपुण भ्रू भंगिमा पंडिता॥

वादित्रादि समोद वादन परा आभूषणा भूषिता।
राधा थी सुमुखी विशाल नयना आनन्द आनन्दोलिता॥
लाली थी करती सरोज पग की भूपृष्ठ को भूषिता।
बिम्बा विद्रुम को अकान्त करती थी रक्तता ओष्ठ की॥
हर्षोत्फुल्ल मुखारविन्दु-गरिमा सौन्दर्य्य आधार थी।
राधा की कमनीय कान्त छवि थी कामाँगना मोहिनी"॥

कुमारी राधा के हृदय में कृष्ण के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ और फिर प्रेम का संचार हुआ। राधा अपना जीवन कृष्णार्पण कर चुकी थी किन्तु उसकी एक अभिलाषा शेष थी। वह थी कृष्ण को पति रूप में पाने की अभिलाषा। समय की निर्दय-गति ने अक्रूर के रूप में ब्रज आकर उसकी इस अभिलाषा को तुषारापात में बदल दिया। कुमारी राधा का आशारविन्द कुम्हला गया। उसको शक्ति होती तो वह कृष्ण को मथुरा जाने से रोक लेती। किन्तु कृष्ण कब मानने वाले थे। वे संकट-मोचक ही जो ठहरे। विवश होकर राधा अपनी सखी के साथ अश्रु बिन्दु गिराकर रात भर दुःखी का जीवन व्यतीत करती रही। वह चाहती थी कि अम्बर में सूर्य देव छिपे ही रहें। प्रकृति के कठोर नियमों ने राधा के दुःख पर ध्यान न दिया। प्राची ने अम्बर-तल के अंक को चीरते हुए भगवान् भुवन भास्कर ने अपना [illegible] सिर निकाला जिसे प्रेमाती राधा [illegible] सहन नहीं कर सकी। [illegible] श्री कृष्ण ने अक्रूर के साथ मथुरा को गमन किया।

कुछ दिनों के बाद [illegible] राधा को ज्ञात हुआ कि [illegible] कृष्ण मथुरा ही रहेंगे। राधा अति [illegible] थी। देखिए—

[illegible]
[illegible]॥

उपर्युक्त पंक्तियों में राधा की सहृदयता की झलक दीख पड़ती है। इनसे उसकी त्याग-वृत्ति का भी भास होता है। इस त्याग वृत्ति में कितनी शक्ति है इसका अनुमान कदाचित् तभी हो सकेगा जब वायु और अम्बर में कोई उपद्रव हो।

निम्न पंक्तियाँ भी राधा के सहृदयतापूर्ण व्यक्तित्व की परिचायक हैं। इनमें राधा ने पवन द्वारा कृष्ण के पास अपना सन्देश भेजना चाहा है और उसे मार्ग में उपद्रव न मचाने का उपदेश किया है। यथा—

"संलग्ना हो सुखद जल के श्रान्तिहारी कणों से।
लेके नाना कुसुम कुल का गंध आमोदकारी॥
निर्धूली हो गमन करना उद्धता भी न होना।
आते जाते पथिक जिससे पथ में शान्ति पावें॥
लज्जाशीला युवति पथ में जो कहीं दृष्टि आवे।
होने देना विकृत बसना तो न तू सुन्दरी को॥
जो थोड़ी भी श्रमित वह हो गोद ले श्रान्ति खोना।
होंठों की औ कमल-मुख की म्लानताएँ मिटाना॥
जो पुष्पों के मधुर-रस को साथ सानन्द बैठे।
पीते होवें भ्रमर-भ्रमरी सौम्यता तो दिखाना॥
थोड़ा सा भी न कुसुम हिले और न उद्विग्न वे हों।
क्रीड़ा होने न कलुपमयी केलि में हो न बाधा॥
प्यारे-प्यारे तरु किशलयों को कभी जो हिलाना।
तो तू ऐसी मृदुल बनना टूटने वे न पावें॥
शाखा-पत्रों सहित जब तू केलि में मग्न होना।
तो थोड़ा भी दुःख न पहुँचे पांख के शावकों को।
तेरी जैसी मृदु पवन से सर्वथा शान्ति का भी।

तो तू मेरे विपुल दुःख को भूल के धीर होके।
खोना सारा कलुष उसका शान्ति सर्व्वांग होना।
कोई क्लान्ता कृषक ललना खेत में जो दिखावे।
धीरे-धीरे परस उसको गात की क्लान्ति खोना।
जाता कोई जलद यदि हो व्योम में तो उसे ला।
छाया द्वारा सुखित करना तप्तभूतांगना को।
कुञ्जों बागों विपिन यमुना-कूल या आलयों में।
सद्गन्धों से सनित सुख की वास सम्बन्ध से आ।
कोई भौंरा विकल करता हो किसी कामिनी को।
तो सद्भावों सहित उसको ताड़ना दे भगाना।

इसमें सन्देह नहीं कि राधा उदार थी। परन्तु जहाँ उनकी प्रवृत्ति परोपकार की ओर उन्मुख हुई है वहां उनके स्वार्थों का संघर्ष नहीं है। उनका संदेश लेकर पवन मथुरा जा रहा है। वह अपने कार्य में बाधा न डाल कर यदि किसी थके व्यक्ति को शीतलता प्रदान कर देता है तो उससे राधा की क्या हानि है। राधा की परीक्षा तो उसी स्थल पर उचित होगी जहाँ उनके प्रधान स्वार्थों के बलिदान की समस्या का आविर्भाव होगा।

राधा प्रेयसी है कृष्ण की। वह उन्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय समझती है। अतः उस का स्वार्थ कृष्ण के प्रति ही अवलम्बित होगा। यहाँ अब हमें राधा की लोक-हित-प्रवृत्ति की परीक्षा करना है। गम्भीरता-पूर्वक परीक्षण करने पर हम राधा को इस सम्बन्ध में दुर्बलता की प्रतीक पाते हैं। राधा कृष्ण के ब्रज न लौटने का कारण जानती है किन्तु फिर भी वह भ्रमर को उपालम्भ देती है। यथा—

"अयि अलि तुझ में भी सौम्यता मैं न पाती।
मम दुःख सुनता है ध्यान देके तू।
अति चपल बड़ा ही ढीठ औ कौतुकी है।
थिर तनिक न होता है किसी पुष्प में भी।

मधुकर सुन तेरी श्यामता है न वैसी।
अति अनुपम जैसी श्याम के गात की है।
पर जब-जब आँखें देख लेती तुझे हैं।
तब-तब सुधि आती श्यामली मूर्ति की है।

नव-नव कुसुमों के पास जा मुग्ध हो हो।
गुन-गुन करना है चाव से बैठना है।
पर कुछ सुनता है न तू मेरी व्यथाएँ।
मधुकर इतना क्यों हो गया निर्दयी है।

नहिं टल सकता था श्याम के टालने से।
मम मुख दिशि आता था स्वयं मत्त होके।
एक दिन वह था औ एक है आज या भी।
जब मुख दिशि मेरे ताकता भी नहीं तू।

जब हम व्यथिता हैं ईदृशी तो तुझे क्या।
कुछ सदय न होना चाहिए श्यामबन्धो।
प्रिय निठुर हुए हैं दूर होके दृगों से।
मत बन निर्मोही नैन के सामने तू।"

यह स्पष्ट कहती हैं—

"निर्लिप्ता औ यदपि अति ही संयता नित्य मैं हूँ।
तो भी होती व्यथित अति हूँ श्याम की याद आते।
वैसी वांछा जगत-हित की है आज भी न होती।
जैसी जी में लसित प्रिय के लाभ की लालसा है।"

राधा सुकुमारी है। वह इतना-बड़ा भार सहन नहीं कर सकती। ममता, मोह तथा आसक्ति की देवी जगत हित के कठोर नियमों का कैसे पालन कर सकती है। उसे वह स्थिति जिसमें उसके प्रेमी का वियोग हो, कैसे प्रिय लग सकती है? अब प्रश्न उठ सकता है क्या

राधा की यह दुर्बलता उचित है ? क्या यह कृष्ण ऐसे पुरुष की प्रेयसी होते हुए जगत-हित की उपेक्षा कर सकती है ?

कुछ भी हो यह मानना पड़ेगा कि यह दुर्बलता ही प्रियप्रवास की आधार-सामग्री है। इसी दुर्बलता का क्रमशः विकास होता है। प्रियप्रवास में राधा प्रेयसी हैं और कृष्ण प्रेमपात्र यदि इसके विपरीत बात होती अर्थात् कृष्ण प्रेमिक होते और राधा प्रेम-पात्री तो निश्चय ही प्रियप्रवास का पाँसा पलट जाता, क्योंकि फिर तो कृष्ण के व्रजागमन में कोई कठिनाई न रहती। वास्तविक बात यह है कि राधा की प्रेमिकता और परस्थिति-जन्य परवशता ने कृष्ण की निष्ठुरता के साथ मिलकर विरह की सृष्टि की। यह विरह महाकाव्योपयुक्त विषय था। ऐसी दशा में कवि को राधा को दुर्बल-हृदया के रूप में चित्रित करने को बाध्य होना पड़ा। यदि वह ऐसा न करता तो उसे अपने काव्य की कथा आगे बढ़ाने के लिए घोर परिस्थिति का सामना करना पड़ता।

राधा उद्धव से अपनी गाथा कहती हैं—

"मेरे प्यारे पुरुष पुहुमी-रत्न और शान्त धी हैं।
  संदेशों में तदपि उनकी वेदना व्यंजिता है।
मैं नारी हूँ तरल-उर हूँ प्यार से वंचिता हूँ।
  जो होती हूँ विकल, विमना, व्यस्त वैचित्र्य क्या है ?

जैसे वीची सहज उठती वारि में वायु से है।
  त्यों ही होता चलित चित है कश्चिदावेग द्वारा।
आवेगों से व्यथित बनना बात स्वाभाविकी है।
  हाँ ज्ञानी औ विबुध जन में मुह्यता है न होती।

पूरा-पूरा परम प्रिय का मर्म मैं बूझती हूँ।
  है जो वांछा विपद उर में जानती भी उसे हूँ।

यत्नो द्वारा प्रति दिन अतः संयता मैं महा हूँ।
तो भी देती विरह-जनिता वासनाएँ व्यथा हैं।
जो मैं कोई विहग उड़ता देखती व्योम में हूँ।
तो उत्कण्ठा विवश चित में आज भी सोचती हूँ।
होते मेरे निबल तन में पक्ष जो पक्षियों से।
तो यों ही मैं समुद उड़ती श्याम के पास जाती।
जो उत्कण्ठा अधिक प्रबला है किसी काल होती।
तो ऐसी है लहर उठती चित मे कल्पना की।
जो हो जाती पवन गति पा वांछिता लोक प्यारी।
मैं छू आती परम-प्रिय के मंजु पदाम्बुजों को।

× × ×

ये आंखें जिधर फिरती चाहती श्याम को हैं।
कानों में भी मुरलि-रवि की आज भी लौ लगी है।
कोई मेरे हृदय-तल को पैठ के जो विलोके।
तो पावेगा लसित उसमें कान्ति प्यारी उन्हीं की।

राधा को श्री कृष्ण के प्रति मोह ही नहीं वरन् उसके हृदय में भी कृष्ण के प्रति प्रणय का भी संचार हो चुका है। वह ऊधव से कहती हैं—

"नाना स्वार्थों विविध सुख की वासना मध्य डूबा।
आवेगों से चलित ममताधान है मोह होता।"

× × ×

"मद्यः होती फलित चित में मोह की मत्तता है।
धीरे-धीरे प्रणय बसता व्यापता है उरों में।
हो जाती है विवश अपरा वृत्तियां मोह—द्वारा।
भावोन्मेषी प्रणय करता सर्व सद्वृत्ति को है।
देखी जाती कुवर घर के रूप में है महत्ता।
पायी जाती मुरलि-स्वर में व्यापिनी दिव्यता है।

प्यारे-प्यारे मनुज गण के मन्त्रिकी मूर्ति ये हैं।
कैसे व्यापी प्रणय उनका अन्तरों में न होगा।"

गोपिकाओं के विषय में राधा कहती है—

"जो धाता ने अवनि-तल में रूप की सृष्टि की है।
तो क्यों ऊधो न वह नर के मोह का हेतु होता।
माधो जैसे रुचिर जन का रूप न्यारा विलोके।
क्यों मोहेंगी न वह सुमना सुन्दरी बालिकाएँ।
आसक्ता है अमित नलिनी एक छाया पीत में।
प्रेमोन्मत्ता विमल विधु की है सहस्रों चकोरी।
जो बालाएँ विपुल हरि में रक्त हैं चित्र क्या है।
प्रेमी का ही हृदय गरिमा जानता प्रेम की है।
मैं मानूँगी अधिक उनमें है महा मोह मग्ना।
तो भी प्रायः प्रणय-पथ की पंथिनी ही सभी हैं।

राधा भी इन गोपिकाओं से बाहर नहीं हैं—

"मेरी भी है कुछ गति यही श्याम को भूल दूँ क्यों?"

कृष्ण के विछोह से गोपिकाएँ संकट ग्रस्त है। राधा के अनुसार—

"सर्वाङ्गों में लहर उठती योवनाम्बोधि की है।
जो है घोरा परम प्रबला औ महोच्छ्वास शीला
तोड़े देती प्रबल तीर जो ज्ञान औ बुद्धि की है।
घातों से है दलित जिसके धैर्य का शैल होता!
चक्री होते चकित जिससे काँपते हैं पिनाकी।
जो वज्रों के हृदय-तल को क्षुब्ध देता बना है।
जो है पूरा व्यथित करता विश्व के देहियों को।
कैसे ऐसे रति रमण के बाण से वे बचेंगी?

जो होके भी परम मृदु है वज्र का काम देता ।
जो होके भी कुसुम करता शेल की सी क्रिया है ।
जो होके भी मधुर बनता है महा दग्ध कारी ।
कैसे ऐसे मदन-शर से रक्षिता वे रहेंगी ।
हो जाते हैं भ्रमित जिसमें भूरि ज्ञानी मनीषी ।
कैसे होगा सुगम पथ सो मन्द-धी नारियों को ।
छोटे छोटे सरित सर में डूबती जा रही हैं ।
सो भूव्यापी सलिल-निधि के मध्य कैसे तरेंगी ।

गोपियों तथा राधा सब की एक ही व्यथा है । सब लोगों के सामने एक ही समस्या है । एक व्यथित बालिका कृष्ण स्मृण कर बादलों की ओर देख कर कहती है

"क्यों तू होके परम प्रिय सा वेदना है बढ़ाता ।
तेरी संज्ञा सलिल धर है और पर्जन्य भी है ।
ठंढ़ा मेरे हृदय-तल को क्यों नहीं तू बनाता ।
तू केकी को रुचिर छवि दिखला है महा मोद देता ।
वैसा ही क्यों मुदित मुझसे है पपीहा न होता ।
क्यों है मेरा हृदय दुखता श्यामता देख तेरी ।"

ठीक इसी भाँति राधा भी वियोग-व्यथा से पीड़ित होकर सुमनों तथा वायु आदि को सम्बोधित कर उपालम्भ देती है । यथा

"यह समझ प्रसूनों पास मैं आज आयी ।
छिति तल पर ये हैं मूर्ति सत्फुल्लता की ।
पर सुखित करेंगे ये मुझे आह कैसे ।
जब विविध दुखों में मग्न होते स्वयं हैं ।
× × ×
यदपि इन सबों में मेंट देती बड़ी ही ।
हृदय दुखित जनों को ये नहीं त्राण होते ।

सनाथों का विविध दुख मे दुख का दृष्टि आना।
जो आँखों में कुटिल जग का चित्र सा खींचते हैं।
आख्यानों के सहित विविधा सांत्वनाएँ नुकी की।
सैतानों की सहज ममता पेट-धंधे सहस्त्रों।
हैं प्राणी के हृदय-तल को फेरते मोह लेते।
धीरे-धीरे दुसह दुख का वेग भी कटाते।
नाना भावों सहित अपनी व्यापिनी मुग्धता मे।
वे हैं प्राय. व्यथित उर की वेदनाएँ हटाते।
गोपी गोपों जनक जननी बालिका बालकों का।
चित्तोन्मादी प्रबल दुख का वेग भी काल पाके।
धीरे-धीरे बहुत बदला हो गया न्यून प्रायः।"

समय परिवर्तन-शील है। परिस्थितियों के अनुसार यह सदा बदलता रहता है। दीन दुखी व्यक्ति समय के निर्दय थपेड़ों की मार खाकर और कर ही क्या सकता है। यही कि वह अपने सुख की कल्पनाओं को विस्मृति के अंक में लिटा दें। किसी वियोगिनी को जब विकसित कमल दीखेगा तो उसे अपने प्रेम-पात्र का स्मरण होगा ही; इसी प्रकार प्रकृति के जब अन्य पदार्थ दिखाई देंगे तो निश्चय ही उसके प्राण छटपटायेंगे। एक सरल हृदया-वियोगिनी क्या इतना भार सहन कर सकती है? नहीं! इसी लिए उसे प्रणय के स्वरूप का आश्रय त्याग कर निर्माणात्मक रूप को अपनाना पड़ता है। समय से प्रभावित होकर राधा को भी यह कार्य करने को बाध्य होना पड़ा। सम्पूर्ण प्रकृति-भाव राधा के लिए कृष्ण-मयी हो गयी। अब प्राकृतिक दृश्य राधा को आनन्द-प्रद लगने लगे। राधा ने नूतन जन्म धारण कर लिया। वह कहती है

जो होता है उदित नभ में कौमुदी कान्त आके।
या जो कोई कुसुम विकसा देख पाती कहीं हूँ।

सतापों का विविध दुख मे दग्ध का दृष्टि आना।
जो आँखों में कुटिल जग का चित्र सा खींचते हैं।
आख्यानों के सहित विविधा सांत्वनाएँ सुकी की।
संतानों की सहज ममता पेट-धंधे सहस्रों।
हैं प्राणी के हृदय-तल को फेरते मोह लेते।
धीरे-धीरे दुसह दुख का वेग भी है घटाते।
नाना भावों सहित अपनी व्यापिनी मुग्धता से।
वे हैं प्राय. व्यथित उर की वेदनाएँ हटाते।
गोपी गोपों जनक जननी बालिका बालकों का।
चित्तोन्मादी प्रबल दुख का वेग भी काल पाके।
धीरे-धीरे बहुत बदला हो गया न्यून प्राय:।"

समय परिवर्तन-शील है। परिस्थितियों के अनुसार यह सदा बदलता रहता है। दीन दुखी व्यक्ति समय के निर्दय थपेड़ों की मार खाकर और कर ही क्या सकता है। यही कि वह अपने सुख की कल्पनाओं को विस्मृति के अँक में लिटा दे। किसी वियोगिनी को जब विकसित कमल दीखेगा तो उसे अपने प्रेम-पात्र का स्मरण होगा ही; इसी प्रकार प्रकृति के जब अन्य पदार्थ दिखाई देंगे तो निश्चय ही उसके प्राण छटपटायेंगे। एक सरल हृदया-वियोगिनी क्या इतना भार सहन कर सकती है? नहीं! इसी लिए उसे प्रणय के स्वरूप का आश्रय त्याग कर निर्माणात्मक रूप को अपनाना पड़ता है। समय से प्रभावित होकर राधा को भी यह कार्य करने को बाध्य होना पड़ा। सम्पूर्ण प्रकृति-भाव राधा के लिए कृष्ण-मयी हो गयी। अब प्राकृतिक दृश्य राधा को आनन्द-प्रद लगने लगे। राधा ने नूतन जन्म धारण कर लिया। वह कहती है

जो होता है उदित नभ में कौमुदी कान्त आके।
या जो कोई कुसुम विकसा देख पाती कहीं हूँ।

लोने-लोने हरित दल के पादपों को विलोके।
प्यारा-प्यारा विकच मुखड़ा है मुझे याद आता।
कालिन्दी के पुलिन पर जा या सजीले सरों में।
जो मैं फूले कमल कुल को मुग्ध हो देखती हूँ।
तो प्यारे के फलित कर की औ अनूठे पगों की।
छा जाती है सरस सुषमा वारि-स्रावी दृगों में।
जो ताराओं से खचित नभ को देखती हूँ निशा में।
या मेघों में मुदित बक की पंक्तियाँ देखती हूँ।
तो जाती हूँ उमग बँधता ध्यान ऐसा मुझे हैं।
मानों मुक्ता लसित उर है श्याम का दृष्टि आता।

छू देती है मृदु पवन जो पास आ गात मेरा।
तो हो जाती परस-सुधि है श्याम प्यारे करों की।
सद्‌गन्धों से सनित वह जो कुंज में डोलती है।
तो होती है सुरति मुख की वास की मँजुता की।
सन्ध्या फूली परम प्रिय की कान्ति सी है दिखाती।
मैं पाती हूँ रजनि तन मे श्याम का रङ्ग छाया।
ऊषा आती प्रति दिवस है प्रीत से रंजिता हो।
पाया जाता वर बदन सा ओप आदित्य में हैं।

मैं पाती हूँ अलक सुषमा भृङ्ग की मालिका में।
है आँखों की सुछवि मिलती खंजनों औ मृगों में।
दोनों बाहें कलम कर को देख है याद आती।
पायी शोभा रुचिर शुक के ठोर में नासिका की।
है दाँतों की झलक मुझको दीखती दाड़िमों में।
बिम्बाओं में वर अधर सी राजती ललिमा है।
मैं केलों में जघन युग की देखती मन्जुता हूँ।
गुल्फों की सी ललित सुषमा है गुलों में दिखाती।

सायँ प्रात: सरस स्वर से कूजते हैं पखेरू।
प्यारी-प्यारी मधुर ध्वनियाँ मत्त हो हैं सुनाते।
मैं पाती हूँ मधुर-ध्वनि में कूजने में खगों के।
मीठी तानें परम प्रिय की मोहनी वंशिका की।"

अब राधा का वियोग, वियोग नहीं रहा। उसका स्थान धैर्य ने ले लिया। यह ठीक है कि कृष्ण का मानव-स्वरूप अवश्य ही उनके नेत्रों से ओझल हो गया पर क्या यह विचित्र स्वरूप मिट सकता है, ओझल हो सकता है। नहीं, कभी नहीं। यह स्वरूप अक्षय है अमिट है, अमर है। राधा के मानसिक विकास से परिणाम यह हुआ कि उसके व्यथित होने का कोई कारण न रहा

"प्यारे आवें मृदु बयन कहें प्यार से अंक लेवें।
ठंढे होवें नयन-दुख हों दूर मैं मोद पाऊँ।
ए भी हैं भाव मम उर के और ए भाव भी हैं।
प्यारे जीवें जग-हित करें गेह चाहे न आवें।"

समय तथा परिस्थितियों के साथ राधा में भी परिवर्तन हो गया। प्रियप्रवास की राधा अब वह राधा न रही। अब उसमें लोकोपकार की भावना आ गई। उसके बदन से चिन्ता की विषादमयी रेखाएँ अदृश्य हो गयी और उनके स्थान पर शान्ति की लालिमा छा गई। उसके हृदय की गरम आहें स्थिर हो गई; नेत्रों के वेदना-जनित-अश्रुओं को शान्ति-भावना ने उसके कपोलों से पोंछ दिया और अब उसकी आँखों में सेवा तथा त्याग की भावना से उत्पन्न होने वाले जल-कण झलकने लगे। अब वह साधारण स्त्री से देवी के पद पर आसीन हो गई। वह (राधा) अब दूसरों के दुःख को अपना दुःख तथा उनके सुख को अपना सुख समझने लगी। यथा—

"मैं ऐसी हूँ न निज दुख से कष्टिता शोक-मग्ना।
हूँ जैसी हूँ व्यथित ब्रज के वासियों के दुःख से।

गोपी गोपों व्यथित ब्रज की बालिका बालकों को।
आके पुत्रानुपम सुखदा कृष्ण प्यारे दिखावें?"

राधा को जिस प्रकार शान्ति प्राप्त हुई वह उसी भाँति ब्रज की अन्य बालाओं को शान्ति देने का प्रयास करने लगी।

"देखो प्यारी भगिनी सब को प्यार की दृष्टियों से।
जो थोड़ी भी हृदय-तल में शान्ति की कामना है।
क्या देखा है जलद तन में श्याम की मंजु शोभा।
पुच्छाभासे मुकुट सुषमा है कलापी दिखाता।
पी का सच्चा प्रणय उर में झाँकता है पपीहा।
ए बातें हैं सुखद इनमें भाव क्या है व्यथा का।"

सम्पूर्ण विश्व के अणु-अणु के प्रति सहानुभूति प्रकट करने लगी वह अब विश्व-प्रेमिका बन गई :—

"आटा चींटी विहग गण थे वारि औ अन्न पाते।
देखी जाती सदय उनकी दृष्टि कीटादि में भी।
पत्तों को भी न तरु गण के वे वृथा तोड़ती थी।
जी से वे थीं निरत रहतीं भूत सम्वर्द्धना में।
वे छाया थी सुजन शिर की शासिका थी खलों की।
कँगालों की परम-निधि थी औषधि पीड़ितों की।
दीनों की थी भगिनि, जननी थी अनाश्रितों की।
आराध्या थी अवनि ब्रज की प्रेमिका विश्व की थीं।
जो देती थी कलह जनिता आधि के दुर्गुणों को।
धो देती थीं मलिन मन की व्यापिनी कालिमाएँ।
बो देती थीं हृदय-तल में बीज भावज्ञता का।
वे थीं चिन्ता विजित चित में शान्ति-धारा बहातीं।
जैसा व्यापी दुसह दुःख था गोप गोपाँगना का!
वैसी ही थी सदय-हृदया स्नेह की मूर्ति राधा।

जैसी मोहाकलित व्रज में तामसी रात आयी।
वैसी ही ये लसित उसमें कौमुदी के समा थीं।"

इसमें सन्देह नहीं राधा ने निरन्तर विकास पाकर मनुष्यत्व से देवत्व का पद ग्रहण कर लिया। वे उस स्थिति में पच गयी जहाँ दुःख और सुख, विषाद और हर्ष में कोई अन्तर नहीं रह सकता। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हरिऔध की राधा आधुनिक युग की देन है। राधा के जीवन-विकास पर लक्ष्य कर हरिऔध जी ने ईश्वर-प्राप्ति विषयक साधना का वह स्वरूप उपस्थित किया है जिसके अनुयायी वे स्वयं थे।

८

प्रियप्रवास में कृष्ण का स्वरूप

हरिऔध जी ने 'प्रियप्रवास में कृष्ण का जो रूप उपस्थित किया है उससे हिन्दी साहित्य में एक अभाव की पूर्ति हुई है। हरिऔध कृष्ण के उस रूप से प्रभावित नहीं है जो शताब्दियों से हमारे काव्य के विषय रहे हैं। उनके कृष्ण न तो भागवत के ही हैं और न महाभारत के। वे गोपी-वल्लभ होते हुए भी पूरे कर्मयोगी हैं। गोप-गोपियों के प्रति उनमें अपूर्व आकर्षण एवं अनुकरणीय कर्म निरतता है। प्रियप्रवास के आरम्भ में हमें जिन कृष्ण के दर्शन होते हैं वे बंशी बजाने में प्रवीण हैं। उनका मुरली से ऐसा प्रेम देख कर ऐसा भास होता है कि प्रियप्रवास के कृष्ण भी अन्य कवियों के कृष्ण की भाँति रमणियों के साथ विहार करने वाले होंगे किन्तु आगे चल कर हमारी इस धारणा को ठेस ही लगती है। हरिऔध जी के कृष्ण

रामायण तथा भागवत दोनों के लोक रक्षक तथा लोक-रंजक का पूर्णतः समन्वित है।

हरिऔध जी के कृष्ण की मनोवृत्तियाँ [illegible] इस प्रकार है—

[illegible]

बातें विरोधकर थी उनको न प्यारी।
ये थे न भूल कर भी अप्रसन्न होते।
थे प्रीति साथ मिलते सब बालकों से।
थे खेलते सकल खेल विनोदकारी।
नाना अपूर्व फल फूल सदा खिला के।
थे थे विनोदित महा उनको बनाते
जो देखते कलह शुष्क विवाद होता।
तो शान्त श्याम उसको सदा थे।
कोई बली निबल को यदि था सताता।
तो थे तिरस्कृत किया करते उसे थे।
होते प्रसन्न यदि थे यह देखते थे।
कोई स्वकृत्य करता अति प्रीति से है।
यों ही विशिष्ट पद-गौरव की उपेक्षा।
देती नितांत उनके चित्त को व्यथा थी।
माता पिता गुरुजनों वय में बड़ों को।
होते निरादृत कहीं यदि देखते थे।
तो खिन्न हो, दुःखित हो लघु को सुतों को।
शिक्षा-समेत बहुधा बहु शास्ति देते।
थे राजपुत्र उनमें मद था न तो भी।
वे दीन के सदन थे अधिकांश जाते।
बातें मनोरम सुना दुख जानते थे।
औ थे विमोचन उसे करते कृपा से।
रोगी, दुखी, विपद आपद में पड़ों की।
सेवा अनेक करते निज हस्त से थे।
ऐसा निकेत व्रज में न मुझे दिखाया।
कोई जहाँ दुःखित हो पर वे न होवें।

यमुना से कालिया नाग को निकालने का उन्होंने दृढ़ संकल्प किया था। यथा—

"अतः करूँगा यह कार्य मैं स्वयं।
स्वहस्त में प्राण स्वकीय को लिए।
स्वजाति औ जन्म धरा निमित्त मैं।
न भीत हूँगा इस काल सर्प से।
सदा करूँगा अपमृत्यु सामना।
सभीत हूँगा न सुरेन्द्र वज्र से।
कभी करूँगा अवहेलना न मैं।
प्रधान धर्म्मांग परोपकार की।
प्रवाह होते तक शेष श्वास के।
सरक्त होते तक एक भी शिरा।
सशक्त होते तथा एक लोम के।
किया करूँगा हित भूत मात्र का।

अग्नि में जलते हुए ग्वालों की भी उन्होंने रक्षा की थी। यथा—

"विपत्ति से रक्षण सर्व भूत का।
सहाय होना असहाय जीव का।
उबारना संकट से स्वजाति का।
मनुष्य का सर्व प्रधान कृत्य का।
बिना न त्यागो ममता स्वप्राण की।
बिना न जोखों ज्वलाग्नि में पड़े।
न हो सका विश्व महान कार्य है।
न सिद्ध होता भव जन्म हेतु है।

× × × ×

बढ़ो करो वीर स्वजाति का भला।
अपार दोनों विध लाभ है हमें।

रहे जहाँ सेवक सैकड़ों वहाँ।
मन्हें भला कानन कौन भेजता।
परन्तु आते वन में समोद थे।
अनन्त आनीजन के लिए स्वयं।
तथा उन्हें वाँछित थी नितान्त ही।
वनान्त में हिंसक जन्तु हीनता।

× × ×

मुकुन्द आते जब थे अरण्य में।
प्रफुल्ल हो तो करते विहार थे।
विलोकते थे सुविलास वारिका।
कालिन्दजा के कल कूल पै खड़े।
समोद बैठे गिरि सानु पै कभी
अनेक थे सुन्दर दृश्य देखते।
बने महा उत्सुक थे कभी छटा।
विलोकते निर्झर नीर की रहे।
सुवीथिका में कल कुञ्ज पुञ्ज में।
शनैः शनैः थे सविनोद घूमते।
विमुग्ध हो हो वह थे विलोकते।
लता सुपुष्पा मृदुमन्द दूलिता।"

दिन भर के बाद सन्ध्या समय भी कृष्ण गायों के साथ घर लौटते थे तो उनके दर्शनाभिलाषी उनके दर्शन की आस लगाए राह तकते रहते थे—

"कुकुम-शोभित गोरज बीच से।
निकलते ब्रज-वल्लभ यों लसे।
कदन ज्यों करके दिशि कालिमा।
गगन में नलिनी-पति राजता।

सुन पड़ा स्वर ज्यों रथ चक्र का।
सकल ग्राम समुत्सुक हो उठा।
हृदय-यंत्र निनादित हो गया।
तुरत ही अनियंत्रित भाव से।

बहु युवा युवती गृह बालिका।
सकल बालक वृद्ध वयस्क भी।
विवश से निकले निज गेह में।
स्वदृग का दुख मोचन के लिए।"

ऐसे ही ब्रज में नाना प्रकार के आनन्दों की वृष्टि होती थी। यह कार्यक्रम नित्य होता था। समयानुसार इस कार्य ने पलटा खाया। अब आकर अक्रूर ने श्री कृष्ण को मथुरा बुलाने का दुःखद समाचार सुनाया। कृष्ण जी को साथ लेकर नन्द बाबा को मथुरा जाना पड़ा। कृष्ण के जाने का दृश्य बड़ा ही करुणा-मूलक था। यद्यपि वे थोड़े समय के लिए ही मथुरा जा रहे थे किन्तु ब्रजवासी कृष्ण के कृत्यों के कारण इतने मुग्ध थे कि वे उन्हें कंस जैसे राजा के चंगुल में फँसाना न चाहते थे। उनके हृदय में नाना प्रकार की आशंकाओं के केन्द्र बन रहे थे। नन्द की वेदना का पार न था। वे न तो जाना ही चाहते थे और न कंस की आज्ञोलँघन करना चाहते थे—

"सित हुए अपने मुख लोभ को।
कर गहे दुःख व्यंजक भाव से।
विषम संकट बीच पड़े हुए।
विलखते चुपचाप अकेले थे।

जब कभी बढ़ती उर की व्यथा।
छत कभी वह थे विलोकते।
टहलते फिरते सविषाद थे।
वह कभी निज निर्जन कक्ष में।"

कितनी करुणाजनक दशा है नन्द के हृदय की। ठीक ऐसी ही अवस्था माता यशोदा की है। वह स्वयं रात्रि तुहिन-कणों के बिन्दुओं के रूप में अश्रु धारा बहा रही थी। यथा—

"विकलता लख के ब्रजदेवि।
रजनि भी करती अनुताप थी।
निपट नीरव ही मिस ओस के।
नयन से गिरता बहु वारि था।"

राधा कृष्ण को अपना प्रणय-पात्र बना चुकी थी। अतः कृष्ण के जाने के समय उसके कोमल हृदय को ठेस क्यों न लगती! वह अपनी सखी से व्यथित होकर कहने लगी—

"यह सकल दिशाएँ आज रो सी रही हैं।
यह सदन हमारा है हमें काट खाता।
मन उचट रहा है चैन पाता नहीं है।
सघन विपिन में है भागता सा दिखाता।
यह ध्वनि करुणा की फैल सी क्यों गई है।
सब तरु मन मारे आज क्यों यों खड़े हैं।
अवनि अति दुखी सी क्यों हमें है दिखाती।
नभ पर दुख छाया पात क्यों हो रहा है।
सब नभ तल तारे जो उगे दीखते हैं।
यह कुछ ठिठके से सोच मे क्यों पड़े हैं।
ब्रज दुःख लख के ही क्या हुए हैं दुखारी।
कुछ व्यथित बने से या हमें देखते हैं।"

प्रातः हुआ। श्री कृष्ण के ब्रज से जाने की समस्त तैयारी हो गयी। इसी समय एक वृद्ध ने आकर अक्रूर से कहा —

सच्चा प्यारा सकल ब्रज का वंश का उजाला है।
दीनों का है परम-धन और वृद्ध का नेत्र तारा।

बालाओं का प्रिय स्वजन औ बन्धु हैं बालकों का।
ले जाते हैं सुरतरु कहाँ आप ऐसा हमारा।"

एक वृद्धा के वैन सुनिए—

"जो रूठेगा नृपति ब्रज का वास ही छोड़ दूँगी।
ऊँचे ऊँचे भवन तज के जंगलों में बसूँगी।
खाऊँगी फूल फल दल को व्यञ्जनों को तजूँगी।
मैं आँखों से अलग न तुम्हें लाल मेरे करूँगी।
जो लेवेगा नृपति मुझसे दण्ड दूँगी करोड़ों।
लोटा थाली सहित तन के वस्त्र भी बेच दूँगी।
जो माँगेगा हृदय वह तो काढ़ दूँगी उसे भी।
बेटा तेरा गमन मथुरा में न आँखों लखूँगी।"

गायें भी तत्कालीन परिस्थिति से अवगत हो गयीं—

"दौड़ी आईं निकट हरि के पूँछ ऊँचा उठाये।
खिन्ना दीना विपुल कँह थी वारि था नेत्र लाता।
ऊँची आँखों कमल-मुख थी देखती शंकिता हो।"

शुकादि पक्षियों को भी ब्रज की कठोर नियति का ज्ञान हो गया है—

"पाला तूआ मदर गृह के द्वार का भी दुखी था।
भूल जाना सकल स्वर था उन्मना हो रहा था।
चिल्लाता था अति विकल था औ यही बोलता था।
यों लोगों को व्यथित करके लाल जाते कहाँ हो।"

अन्त में परिणाम वही हुआ जिसकी शंका ब्रज-वासियों को सदा बनी रहती थी। कृष्ण राजनीतिक झमेलों में फँस कर मथुरा ही रह गये। नन्द को अकेले ही ब्रज लौटना पड़ा। मथुरा की राजनीति में भाग लेना कृष्ण को अतीव आवश्यक था, दूसरी ब्रज वासियों की स्मृति उन्हें सदैव बनी रहती थी। अब प्रश्न यह था कि इन दोनों में से

कौन से मार्ग का अनुसरण करे। उन्होंने व्यक्तिगत सुखों की लालसा को लोक-हित की वेदी पर बलिदान कर दिया। सचमुच प्रियप्रवास के जन्मदाता कृष्ण ही हैं। जब से उन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय ब्रजवासियों को दिया उसी दिन उन्हें उनके कारण भावी संताप के लिए उद्यत हो जाना चाहिए था। वास्तविकता तो यह है कि प्रियप्रवास का आधार-स्थल न तो कृष्ण का शारीरिक सौंदर्य था और न उनकी अलौकिकता। उसका आधार स्थल थी वह प्रकृति जो ब्रज-वासियों को आनन्दमयी थी। यह सत्य है कि यदि कृष्ण अपना सम्बन्ध केवल ग्राम-हित के कार्यों से रखते तो उन्हें इतनी कठिनाइयों से युद्ध न लेना होता जिनके कारण वे इच्छा करते हुए भी मथुरा से न लौट सके। यदि वे ग्रामीण क्षेत्र से ही सम्बन्ध रखते तो उन पर युवतियों का मुग्ध होना सम्भव था। उनकी अलौकिकता को देखकर युवतियाँ उन्हें अपना प्राण-वल्लभ बनाने की कामना भी करती। ऐसी परिस्थिति में राधा और कृष्ण के प्रणय का विकास हो सकता था और फिर प्रियप्रवास की उत्पत्ति की कोई कामना न रहती। किन्तु यह परिस्थिति तथा जीवनोद्देश्य आदि सब कुछ भिन्न था। गोपियों को प्रबोध करते हुए ऊधो श्री कृष्ण की प्रकृति का परिचय देते हैं।

"वे जी से हैं जगत जन के सर्वथा श्रेय कामी।
प्राणों से हैं अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा।

स्वार्थों को औ विपुल सुख को तुच्छ देते बना हैं।
जो आ जाता जगत-हित है सामने लोचनों के।

हैं योगी लौं दमन करते लोक-सेवा निमित्त।
प्यारी प्यारी हृदय-तल की सैकड़ों लालसाएँ।"

प्रियप्रवास के भी कृष्ण मानवता के सभी गुणों से ओत-प्रोत हैं। यद्यपि वे जगत-हित के कार्यों में लीन हैं किन्तु फिर भी ग्रामीण-जीवन

सायं प्रात: प्रीत पल घटी है उन्हें याद आती।
सोते में भी अवनि ब्रज का स्वप्न वे देखते हैं।
कुन्जों में ही मन-मधुप सा सर्वदा घूमता है।
देखा जाता तन भर वहाँ मोहनी मूर्ति का है।"

इस प्रकार हम श्री कृष्ण को प्रियप्रवास में, साधारण मानव, कर्तव्य-परायण एवं जन-हित के कार्यों में सर्वत्र भाग लेने वाला पाते हैं।

६

प्रियप्रवास में प्रकृति चित्रण

हरिऔध जी ने प्रियप्रवास में भिन्न-भिन्न विधियों से प्रकृति-चित्रण करके अपनी काव्य-प्रतिभा एवं पाण्डित्य का प्रदर्शन किय है। प्रियप्रवास में एक प्रकृति-चित्र वह है जिसमें मानव के व्यक्ति का प्रभाव स्पष्ट होता है। ऐसे प्रकृति-चित्रण यथार्थ तथा अलंकृ नहीं होते वरन् उसमें भाव का चित्रण इसमें होता है जिसकी तीव्रत तथा प्रधानता हमारे हृदय में होती है। रति, शोक, भय आदि मानव हृदय के प्रधान अंग है। हरिऔध जी के प्रियप्रवास में इन सब भावों का समावेश देख पड़ता है।

प्रियप्रवास रति-भाव से विशेषतया विभूषित है। कारण कि वह राधा तथा कृष्ण की एक प्रणय-कथा है। आदि से अन्त तक इसमें करुण का स्रोत प्रवाहित होता है। अत: इसमें उन्मादता का समावेश नहीं दिखाई देता। बेचारी राधा को वह दिन ही नहीं प्राप्त होता जिसमें उसके आनन्दोन्माद से सन्ध्या की अरुणिमा और भी गाढ़ी हो

जाए। वह बेचारी अपने सुख के दिवसोंकी आशा में बैठी दीख पड़ती है किन्तु उसी क्षण ईश्वर निर्दय होकर उसकी इस आस पर पानी फेर देता है। ऊपर जिस प्रवृत्ति का उल्लेख किया गया है उसका करुण रूप ही प्रियप्रवास मे अधिक विकसित हुआ है। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ देखिए। राधा व्यथित होकर सखी से कह रही है—

"यह सकल दिशाएँ आज रो-सी रही हैं।
यह सदन हमारा है हमें काट खाता।
मन उचट रहा है चैन पाता नहीं है।
विजन विपिन में है भागता सा दिखाता।
कटु ध्वनि करुणा की फैल सी क्यों गई है।
तरुवर मन मारे आज क्यों यों खड़े हैं।
अवनि अति दुखी सी क्यों हमें है दिखाती।
नभ पर दुःख छायापात क्यों हो रहा है। २।
सब नभतल तारे जो उगे दीखते हैं।
यह कुछ ठिठके से सोच में क्यों पड़े हैं।
ब्रज दुःख लख कर ही क्या हुए हैं दुखारी।
कुछ व्यथित बने से या हमें देखते हैं। ३।
रह रह किरणें जो फूटती हैं दिखाती।
वह मिप इनके क्या बोध देते हमें हैं।
कर वह अथवा यों शान्ति का हैं बढ़ाते।
विपुल व्यथित जीवों की व्यथा मोचने को। ४।
दुख अनल शिखाएँ व्योम में फूटती हैं।
यह किस दुखिया का है कलेजा जलाती।
अहह अहह देखो टूटता है न तारा।
पतन दिलजले के गात का हो रहा है। ५।

सखि ! मुख अब तारे क्यों छिपाने लगे।
यह दुख सहने की ताब क्या हैं न लाते।
परम विफल होके आपदा टालने में।
यह मुख अपना हैं लाज से यों छिपाते। ६।

× × ×

क्या बातें हैं मधुर इतना आज तू जो बना है।
क्या आते हैं व्रज-अवनि में मेघ-सी कान्ति वाले।
या कुन्जों में अटन करते देख पाया उन्हें है।
या आके है समुद परसा हस्त द्वारा उन्होंने। ७।

मानसिक विकारों से पीड़ित मन प्रकृति पदार्थों द्वारा और भी अधिक पीड़ित हो जाता है। ऐसे अवसर पर प्राकृतिक पदार्थ उद्दीपन का कार्य करते हैं। कृष्ण-वियोग-मग्ना गोपियों की भी यही अवस्था थी। बहुत समय तक उन्हें भी प्रकृति का वही रूप दिखाई पड़ा। यथा—

"नीला प्यारा उदक सरिका देख के एक श्यामा।
बोली खिन्ना विपुल बनके अन्य गोपांगना से।
कालिन्दी का पुलिन मुझको उन्मना है बनाता।
प्यारी-प्यारी जलद तन की मूर्ति है याद आती।"

ऊधो से गोपिकाएं कहती हैं—

"ऐसी कुन्जें व्रज अवनि में हैं अनेको जहां जा।
आ जाती है युगल दृग के सामने मूर्ति प्यारी।
नाना लीला ललित जसुदा लाल ने की जहाँ है।
ऐसी ठौरों ललक दृग है आज भी लग्न होते ?।
फूली डालें सुकुसुम-मयी नींद की देख आँखों।
आ जाती है हृदय-धन की मोहिनी मूर्ति —

विचित्रता का शुभ सिद्ध-पीठ सा।
प्रशान्त वृन्दावन दर्शनीय था। १।

कलोल कारी खग वृन्द कूजिता।
सदैव मानन्द मिलिन्द गुंजिता।
रही सकुंजें वन में विराजिता।
प्रफुल्लिता पल्लविता लतामयी। २।

कई निराले तरु चारु अङ्क में।
लुभावने पल्लव लाल थे लसे।
सदैव थे जो करते विवर्द्धिता।
स्वलालिमा से वन की ललामता। ३।

प्रसून शोभी तरु पुंज अङ्क में।
लता अनेकों लिपटी प्रफुल्लिता।
जहाँ तहाँ थी वन में विराजिता।
रिमता समालिंगित कामिनी समा। ४।

सुदूलिता थी अति कान्त भाव से।
कहीं संराला लतिका लवंग की।
कहीं लसी थी महीं मंजु अङ्क में।
सुलालिता सी नव माधवी लता। ५।

समीर संचालित मन्द मन्द हो।
कहीं दलों से करता सुकेलि था।
प्रसून वर्षा रत था कहीं हिला।
सपुष्प शाखा सुलता प्रफुल्लिता। ६।

कहीं उठाता बहु मंजु वीचियाँ।
कहीं खिलाता कलिका प्रसून की।
बड़े अनूठेपन साथ पास जा।
कहीं हिलाता कमनीय कंज था। ७।

अमेद ऊदे अरुणाभ बैगनी।
हरे अबीरी सित पीत संदली।
विचित्र वेशी बहु अन्य वर्ण के।
विहँग मे थी लसिता बनस्थली। ८।

मानव की मनोवृत्ति अपने द्वारा उपस्थित किए गए प्रकृति चित्रों को पूर्ण रूप से विकसित नहीं करती। यह व्यथा को जन्म देकर, चित्त को चचँल बना देती है। उपर्युक्त पंक्तियों में सरसता तथा सरलता है और इन त्रुटियों का अभाव है। हृदय की जिस परिस्थिति का चित्रण इसमें मिलता है वह निश्चेष्ट होकर बैठने वाली नहीं है। यह प्रकृति के साथ मनुष्य के सम्पर्क को सुबोध बना कर, दोनों के मध्य के व्यवधानों का निवारण कर मनुष्य को प्रकृति के प्रति सहानुभूति के विकास का अवसर देता है। प्रकृति में मानवीय गुणों का आरोप करना इस सहानुभूति की प्रथम अवस्था है। उपर्युक्त अवतरणों में हम प्रवृत्ति का परिचय अवश्य प्राप्त होता है किन्तु उसमें इसमें कुछ भिन्नता है। उसका प्रभाव सँहारात्मक है और इसका रचनात्मक। उदाहरणार्थ देखिए—

"ऊँचा शीश सहर्ष शैल करके था देखता व्योम को।
या होता अति ही सगर्व वह था सर्वोच्चता दर्प से।
या वार्त्ता यह था प्रसिद्ध करता समोद संसार में।
मैं हूँ सुन्दर मानदण्ड ब्रज की शोभामयी भूमि का। १।
पुष्पों से परिशोभमान शतशः जो वृक्ष अंकस्थ थे।
वे उद्घोषित थे सदर्प करते उत्फुल्लता मेरु की।
या ऊँचा करके सपुष्प कर को फूले द्रुमों के व्याज से।
श्री पद्मापति के सरोज पग को शैलेश था पूजता। २।
होता निर्झर का प्रवाह जब था मावर्त्त उद्विग्न।
तो होती उसमें अपूर्व ध्वनि थी उन्मादिनी वर्ग की।

मानों यों वह था सहर्ष कहता सत्कीर्ति शैलेश की।
या गाता गुण था अचिन्त्य गीत का सानन्द सत्कंठ से। ३।

गर्तों में गिरि-कन्दरा निचय में जो वारि था दीखता।
सो निर्जीव मलीन तेजहत था उच्छ्वास से शून्य था।
पानी निर्झर का समुज्ज्वल महा उल्लास की मूर्ति था।
देता था गतिशील वस्तु गरिमा यों प्राणियों को बता। ४।

सद्भावाश्रयता, अचिन्त्यदृढ़ता, निर्भीकता उच्चता।
नाना कौशल मूलता अटलता न्यारी क्षमा शीलता।
होता था यह ज्ञात देख उसकी शास्ता समा भँगिमा।
मानों शासन है गिरीन्द्र करता निम्नस्थ भूभाग का। ५।

ऊँचे दाड़िम से रसाल तरु थे औ आम्र से शिंशपा।
यों निम्नोच्च असंख्य पादप कसे वृन्दाटवी बीच थे।
मानों वे अवलोकते पथ रहे वृन्दावनाधीश का।
ऊँचा शीश उठा मनुष्य जनता के तुल्य उत्कण्ठ हो"। ६।

यह हुई प्रथम अवस्था, इसके पश्चात् होता है द्वितीय अवस्था का विकास। इसमें सहानुभूति अत्यधिक सक्रिय रूप में आ जाती है और वह मानव के दुःख से अत्यन्त दुःखित हो उठती है—

"देता था जल का प्रपात उर में ऐसी उठा कल्पना।
धारा है यह मेरु से प्रसवती स्वर्गीय आनन्द की।
या है भूधर सानुराग द्रवता अँकस्थितों के लिए।
आँसू है वह ढालता विरह में किम्वा व्रजाधीश के।
× × ×

श्रीकृष्ण के वियोग में—

चिन्ता की सी कुटिल उठती अंक में जो तरंगें।
वे थी मानों प्रगट करती भानुजा की व्यथाएं।

मैं होती थी व्यथित अब हूँ शान्ति सानन्द पाती।
प्यारे के पाँव मुख मुरली नाद जैसा उन्हें पा।"

इस प्रकृति वर्णन में अपने ही रूप में राधा को उनके प्रियतम को झलक दिखा दी। इस दर्शन से प्रकृति के समस्त पदार्थों का महत्व बढ़ गया। यह प्रकृति अब यहीं तक सीमित नहीं रही अपितु अब उसमें भगवान् का भी चित्र दीखने लगा।

प्रियप्रवास में हरिऔध जी ने राधा का जैसा विकास दिखाया है वह उन्हें एक सच्चे कलाकार के सिंहासन पर ला बिठाता है। संक्षेप में यही कहना पर्याप्त होगा कि हरिऔध जी ने प्रियप्रवास में प्रकृति के सजीव चित्र उपस्थित किए हैं।

१०
प्रियप्रवास में विरह

विरह प्रियप्रवास के काव्य-प्रासाद की आधार शिला है। यह विरह-प्रधान काव्य है। अतः इसमें विरह के अनुपम चित्र देखने को मिलते हैं। प्रियप्रवास का समस्त विषय विरह-युक्त है। अक्रूर के साथ कृष्ण का मथुरा-गमन—यह घटना समस्त व्रज-वासियों को व्यथा-ग्रस्त किए हुए है। यों तो सम्पूर्ण व्रज-वासी ही नहीं वरन् सारी प्रकृति कृष्ण के वियोग से दुखित है परन्तु राधा, यशोदा की अवस्था बड़ी ही करुणा-मूलक है। यशोदा के दुःख का कारण है कृष्ण की ममता। छोटे से उसने कृष्ण का लालन-पालन किया। उसे सगे बेटे से अधिक समझा। आज उसका वही पुत्र देवकी का पुत्र होने मथुरा चला गया। राधा की व्यथा बहुत ही करुणा-प्रद है।

है। राधा कृष्ण की प्रेयसी है पत्नी नहीं। प्रेमिका अपने प्रियतम के पास से विलग नहीं होना चाहती। ऐसी अवस्था में कृष्ण मथरा-गमन करते हैं। उनके लौटने की कोई निश्चित आशा नहीं है। बस यही बात राधा के विरह-वेदना की आधार-शिला है। दोनों कवियों की परिस्थितियाँ भिन्न है। अतः दोनों में अन्तर भी आ गया है। जायसी ने हिन्दू सती रमणी का चित्र अंकित किया है, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु इसमें काम लिप्सा है। नागमती भली-भाँति जानती है कि पति के लौटने पर वह उसे ठीक से अपना न सकेगी। परन्तु राधा की परिस्थिति इससे भिन्न है। राधा का विरह आध्यात्म-पूर्ण है। वह काम लिप्सा की चेरी नहीं; न उसके प्राण काम-लिप्सा के लिए छटपटाते हैं। हाँ, वह अपने प्रियतम का सामीप्य पाने को अवश्य उत्सुक है। अन्त में राधा की छटपटाहट कृष्ण की कर्तव्य निष्ठा के आदर्श, समय के प्रभाव तथा ज्ञान के प्रादुर्भाव से विश्व-प्रेम तथा लोक-सेवा में परिणत हो जाती है। राधा की विरह-वेदना में एक आदर्श है। उसमें अपूर्ण से पूर्ण होने का एक प्रयास है पर नागमती की विरह-वेदना एक आदर्श पति-पत्नी का प्रलाप मात्र है। एक अन्य बात प्रियप्रवास में और है जो पद्मावती में नहीं प्राप्त होती। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालीदास के मेघदूत की भाँति उपाध्याय जी ने पवन-दूत की सृष्टि की है। विरह-वेदना से सन्तप्त होकर राधा कहती है

"छूके प्यारे कमल पग को प्यार के साथ आजा।
जी जाऊँगी हृदय-तल में मैं तुम्हीं को लगा के॥

निश्चय ही हरिऔध के इस पवन-दूत पर कालीदास के मेघदूत का प्रभाव है। इसमें राधा के विरह में गम्भीरता आ गई है। जायसी का विरह ऊहात्मक है।

सूरदास ने भी राधा को एक विरहिणी के रूप में चित्रित किया

अब हम सूरदास तथा हरिऔध जी की राधा के विरह वर्णन के अन्तर को स्पष्ट करेंगे।

प्रियप्रवास में हरिऔध जी की राधा कृष्ण के वियोग की परिस्थिति में कर्तव्य-भावना का प्राधान्य है। प्रियप्रवास की राधा रूप-शिरोमणि, सर्व-गुण-सम्पन्ना, जनोपकार-निरता तथा लोक-चिन्तापरा है। वे भक्त कवियों की राधा की भांति भोग-विलास में निरत रहने वाली न होकर कर्तव्याकर्तव्य को भली भांति जानती हैं। उनका प्रणय भी सौन्दर्यानुभूति के कारण न होकर साहचर्य-जनित है। बचपन में कृष्ण तथा राधा साथ साथ खेलते थे। [illegible] वही बाल-स्नेह प्रणय में परिवर्तित हुआ। इस प्रणय में कुछ [illegible] नहीं, यह एक वैध प्रणय है। अक्रूर के साथ कृष्ण मथुरा [illegible] गए और वहां से फिर न लौटे।

परन्तु राधा का प्रणय पुनीत था। वह सावित्री की भांति अपने [illegible] पर दृढ़ थी। अपने निश्चय के अनुसार राधा कृष्ण के [illegible] में प्रवृत्त हो गई। यह सब होने पर भी वह जनोपकार-निरता [illegible] है। अपनी अपेक्षा दूसरे के कष्टों का ध्यान अधिक है। उसे [illegible] कृष्ण का ध्यान है; क्योंकि वह देश तथा समाज के [illegible] के लिए ही मथुरा गए हैं। राधा यद्यपि कृष्ण के विरह से [illegible] व्यथित थी किन्तु वह किसी को अपने दुःख का पता नहीं [illegible] देती। उसके विरह में गम्भीरता है। वह पवन को सन्देश-[illegible] बना कर उसे विभिन्न शिक्षाएँ देती है। वह कहती है तुम [illegible] चरणों को स्पर्श कर के ही आ जाना तुम्हें हृदय से लगा कर मैं [illegible] जाऊँगी।

[illegible] आकर गोपियों को कृष्ण की परिस्थितियों का परिज्ञान [illegible] प्रबोध देते हैं तो उसकी स्थिति बिल्कुल ही बदल जाती है। [illegible] पुनर्मिलन की आशाएँ समाप्त हो जाने से समस्त ब्रज

आत्माभिमान में डूब जाती है। अब राधा कृष्ण मिलन का दूसरा
सेवा में देखती है। वह अपने व्यक्तिगत-विरह के स्थान पर
वासियों का दु.ख कम करने लगी।

इस प्रकार प्रियप्रवास की विरह-परिस्थिति सूर के विरह से
है। इसका स्वरूप आदर्शवादी है। इसका स्वरूप वह नहीं जो सं
के अभाव में होता है। वास्तव में यदि पूछा जाय तो प्रियप्रवास
विरह का अवसान उस समय हुआ, कि उसे रस की कसौटी का वि
कहना उचित ही न होगा।

सूरदास का विरह लोक-प्रसिद्ध विरह है। सूर की राधा भो
भाली है और उनका प्रणय भी लिप्सा पर आधारित है। राधा
वालों तथा अपनी सखियों से कृष्ण के प्रणय को छिपाना चाहती
यहाँ आदर्श न होकर कोरी स्वाभाविकता है। विरहावस्था में रा
का प्रणय-काव्य भारतीय वियोग शृंगार का स्वरूप है। उस
गम्भीरता अवश्य है इसमें सन्देह नहीं। वह ऊधो से अपना वि
निवेदन नहीं करती, घर से बाहर ही नहीं आती, परन्तु उसका वि
स्थाई है। प्रियप्रवास तथा सूरदास के विरह मे बड़ा अन्तर है। कृ
मथुरा गए और वहाँ से द्वारिका को प्रयाण किया किन्तु सूरदास
की राधा के विरह मे कोई अन्तर नहीं आया। सूर की राधा को कृ
के पुनर्मिलन की आशा है। संयोग के अभाव में जो साधारण औ
स्वाभाविक विरह होता है वही इसमें है। सूर के विरह में अनुभ
उद्दीपन तथा संचारी भाव है परन्तु प्रियप्रवास की राधा के विरह
स्वरूप ही अन्य है प्रियप्रवास में उद्धव के आगमन तक साधारण वि
रहता है किन्तु उद्धव के लौटने के पश्चात् राधा अपना व्यक्ति
भाव भूलकर अन्य व्रज-वासियों को सुख पहुंचाने का कार्य कर
है और पुनर्मिलन की आशा संयोग के अभाव जनित क्लेश आदि
समाप्ति हो जाती है। अन्त में कवि ने राधा का कर्तव्याकर्तव्य
भावना की सीमा दिखाई है।

प्रणय का यह रूप तर्क युक्त है और आधुनिक शिक्षा प्राप्त स्त्रियों के अनुरूप भी। आदर्श के सम्मुख प्रणय को बलि-वेदी पर निछावर कर देना सम्भव तथा प्रसंशनीय है किन्तु स्वाभाविक नहीं। प्रणय और विरह का सम्बन्ध हृदय से है और कर्तव्याकर्तव्य का मस्तिष्क से। यह सत्य है कि प्रियप्रवास में राधा का प्रणय और विरह महान् आदर्शमय है किन्तु उसमें वह रागात्मकता नहीं जो सूरदास जी के विरह में है।

११
प्रियप्रवास में लोक संदेश

प्रियप्रवास में राधा और कृष्ण की प्रणय कथा है। हरिऔधजी ने इस काव्य में वियोग के उत्कृष्ट चित्र खींच कर प्रणय का उन्नायक रूप पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है। इसमें सन्देह नहीं यदि कवि ने इस काव्य में वियोग की सृष्टि न की होती तो राधा तथा यशोदा के व्यक्तित्व का विकास इतना अच्छा न हो सकता। यों तो वियोग में वैसे ही हृदय-स्पर्श करने की प्रबल शक्ति होती है, इस पर यदि कोई कुशल कलाकार अपनी मंजी हुई लेखनी से उसका चित्रण करे तो उसका स्वरूप और भी मोहक तथा आकर्षक हो जायेगा; और सोने में सुहागा वाली कहावत चरितार्थ होगी।

मध्य-काल के कवियों को राधा तथा कृष्ण के वियोग का चित्रण करने में पर्याप्त सफलता मिली थी। उनके काव्य में कृष्ण का स्थान परब्रह्म का था और गोपियां तथा राधा मोहमयना एवं कृष्ण से प्रेम रखनेवाली युवतियां थीं। ऐसी अवस्था में यदि कृष्ण ने उद्धव द्वारा

मथुरा से सन्देश भेज दिया तो आश्चर्य की क्या बात है। परब्रह्म परमात्मा का कार्य तो यही सन्देश देना है।

परन्तु हरिऔधजी के कृष्ण परब्रह्म परमात्मा नहीं। वह तो साधारण मानव हैं जो जाति-हितैषी, त्याग वृत्ति धारण करने वाले एवं प्रेमिक हैं। ब्रज में जैसा व्यवहार हरिऔध के कृष्ण ने गोपियों के साथ किया उसे देखकर यदि कृष्ण ने उक्त कवियों की भांति ब्रह्म का सन्देश भेज दिया होता तो यह निश्चय ही उनके लिए अस्वाभाविक सिद्ध होता। अतः कृष्ण का गोपियों के सम्मुख कार्य व्यस्तता का प्रमाण प्रस्तुत करना और राधा को स्वार्थ त्याग का सन्देश देना नितान्त सत्य है। कोई भी साधारण कारण इतना प्रभावोत्पादक न हो सकता था। श्रीकृष्ण के वास्तविक माता-पिता वासुदेव तथा देवकी थे। कंस के मारे जाने पर इन दोनों के पथ के कांटे साफ हो गए। ऐसी नूतन परिस्थिति में कृष्ण को अपने पास रोकना कोई असम्भव बात न थी। इसके साथ राज्य के अधिपति को शासन कार्य में कुछ सहायता देना भी अनिवार्य था। मथुरा के शासन प्रबन्ध पर मथुरा-वासियों का सुख-दुख निर्भर हो सकता था और ब्रज पर भी इसका प्रभाव पड़ सकता था। कृष्ण को मथुरा से ब्रज न आ सकने का एकमात्र कारण यही था। इसके लिए कृष्ण ने स्वार्थ-त्याग किया और गोपियों को भी वैसा ही करने की प्रेरणा दी। उनके मनोभाव देखिए—

"प्राणी है यह सोचता समझता मैं पूर्ण स्वाधीन हूँ।
इच्छा के अनुकूल कार्य्य सब मैं हूँ साध लेता सदा॥

ज्ञाता हैं कहते मनुष्य वश में हैं काल कर्म्मादि के।
होती है घटना-प्रवाह-पतिता स्वाधीनता यंत्रिता।१।

देखी यद्यपि हैं अपार ब्रज के प्रस्थान की कामना।
होता मैं तब भी निरस्त नित हूँ नाना द्विधा में पड़ा।

क्यों ! त्वद् वियोग में मज्जमग्न है हो रही नित्यशः ।
जाओ सिक्त करो उसे सदय हो आमूल स्नानाम्बु मे ।२।
मेरे हो तुम बंधु विज्ञवर हो आनन्द की मूर्ति हो।
क्यों मैं जा ब्रज में सका न अब लौं हो जानते भी इसे ।
कैसी है अनुरागिनी हृदय से माता-पिता, गोपिका ।
प्यारे हैं यह भी छिपी न तुमसे जाओ अत प्राण हो ।३।
जैसे हो लघु-वेदना हृदय की औ दूर होवे व्यथा ।
पावें शान्ति समस्त लोग न जलें मेरे वियोगाग्नि में ।
ऐसे ही कर ज्ञान तात ब्रज को देना बताना क्रिया ।
माता का सविशेष तोष करना औ वृद्ध गोपेश का । ४ ।

प्रिय प्रवास की कथा बड़े विचित्र तथा रोचक ढंग से विकसित की गई है । आरम्भ में ही हमें कृष्ण का मनोहर रूप मिलता है । वे सन्ध्या समय ग्वालों के साथ गोचारण करके ब्रज लौट रहे हैं । ऐसा हृदय-हारी स्वरूप देख कर हमारे हृदय में ईर्षा तथा द्वैषाग्नि जाग पड़ती है । परन्तु कृष्ण का यह स्वरूप आगे चल कर बदलता हुआ मालूम पड़ता है । प्रथम सर्ग के अन्त में हमें शोक सा छाता हुआ दीख पड़ता है—

"विपद चित्रपटी ब्रज भूमि की ।
रहित आज हुई वर चित्र से ।
छवि यहाँ पर अंकित जो हुई ।
अहह लोप हुई सब काल को ।"

क्रमशः यह शोक सामग्री विकास पाती जा रही है—

"तिमिर था फिरता बहु नित्य ही ।
पर घिरा तम जो निशि आज की ।
वह विषाद-तमिस्र अहो कभी ।
रहित हो न सका ब्रज भूमि से । १ ।

ब्रज धरा जन के उर आज जो।
विरह - जात लगी यह कालिमा।
तनिक धो न सका उसको कभी।
नयन का यहु वारि-प्रवाह भी। २।

सुखद थे यहु जो जन के लिए।
फिर नहीं ब्रज के दिन वे फिरे।
मलिनता न समुज्वलता हुई।
दुःख निशा न हुई सुख की निशा। ३।

कवि की यह सूचनाएँ हमें राधा कृष्ण के प्रेम का परिणाम जानने के लिए व्यग्र कर देती हैं। कवि के स्पष्ट संकेत करने पर भी पाठक के हृदय में यही आशा बनी रहती है, चाहे कृष्ण ब्रज में भले ही न आवें पर राधा और कृष्ण जीवन में अवश्य ही साक्षात्कार करेंगे। पाठक की इस आशा को आगे चलकर गहरा व्याघात पहुँचता है। नवम् सर्ग में जब कृष्ण ऊधो को बुला कर उन्हें गोपियों के पास ज्ञान का सन्देश लेकर भेजते हैं तो पाठक का यह आशा-कुसुम विदलित हो जाता है और आशा के स्थान पर निराशा की प्रतिमूर्ति आकर अपना अधिकार कर लेती है। किन्तु जब सत्रहवें सर्ग में हम पढ़ते हैं कि—

"उत्पातों से मगध पति के श्याम ने व्यग्र होके।
त्यागा प्यारा नगर मथुरा जा बसे द्वारिका में।

और अन्तिम सर्ग मे हमें यह सूचना मिलती है—

"तो भी आई न वह घटिका औ न वे वार आये।
वैसी सच्ची सुखद ब्रज में वायु भी आ न डोली।
वैसे छाये न घन-रस की सोत सी जो बहाते।
वैसे उन्माद कर स्वर से कोकिला भी न बोली।

अब देखिए राधा की ईश्वरानुभूति—

"पाये जाते विविध जितने वस्तुएँ हैं सबों मे।
मैं प्यारे को अमित रंग औ रूप में देखती हूँ।
तो मैं कैसे न उन सब को प्यार जी से करूँगी।
यों है मेरे हृदय-तल मे विश्व का प्रेम जागा।१।
हो जाने से हृदय-तल का भाव ऐसा निराला।
मैंने न्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये।
मेरे जी मे अनुपम महा विश्व का प्रेम जागा।
मैंने देखा परम प्रभु को स्वकीय प्राणेश ही में।२।"

विश्व-रूप परमेश्वर के सम्बन्ध में उनके विचार देखिए—

"शास्त्रों मे है कथित प्रभु के शीश औ लोचनों की।
संख्याएँ हैं अमित पग औ हस्त भी हैं अनेकों।

सो होके भी रहित मुख से नेत्र नासादिकों से।
छूता खाता श्रवण करता देखता सूँघता है।१।
जो आता है न मन चित में जो परे बुद्धि के है।
जो भावों का विषय नहीं है नित्य अव्यक्त जो है।
है वेदों की न गति जिसमें इन्द्रियातीत जो है।
सो क्या है मैं अबुध अबला जान पाऊँ उसे क्यों।२।
ज्ञाताओं ने विशद इसका मर्म्म यों है बताया।
सारे प्राणी अखिल जग के मूर्तियाँ हैं उसी की।
होती आँखें प्रभृति उनकी भूरि संख्यावती है।
सो विश्वात्मा अमित नयनों आदि वाला अतः है।३।
तराओं में तिमिर हर में वह्नि में औ शशी में।
पायी जाती परम रुचिरा ज्योतियां हैं उसी की।
पृथ्वी पानी पवन नभ में पादपों में खगों में।
देखी जाती प्रथित प्रभुता विश्व में व्याप्त की है।४।
मैंने बातें कथन जितनी शास्त्र-विज्ञात की हैं।
वे बातें हैं प्रगट करतीं ब्रह्म है विश्व-रूपी।
पाती हूँ विश्व - प्रियतम में विश्व में प्राण - प्यारा।
ऐसे मैंने जगत - पति को श्याम में है विलोका।५।
शास्त्रों में है जो लिखित प्रभु की भक्ति निष्काम जो है।
सो दिग्या है मनुज - तन की सर्व - ससिद्धियों से।
मैं होती हूँ सुखित यह जो तत्वतः देखती हूँ।
प्यारे की औ परम प्रभु की भक्तियाँ हैं अभिन्ना।६।

ईश्वरोपासना की अनेक विधियाँ हैं। मूर्ति-पूजा भी उन्हीं में से एक है। मूर्ति-पूजा का उपासक लोक-हित के कार्यों से अपना हाथ खींच सकता है किन्तु समस्त विश्व को ईश्वर माननेवाला व्यक्ति इससे पृथक नहीं रह सकता।

सत्कार्यों का पर हृदय की पीर का ध्यान आना।
भाखी जाती स्मृण अमिधा भक्ति है भावुकों में ।५।

विपद् - सिन्धु पड़े नर - वृन्द के।
दुःख निवारण औ हित के लिए।
अरपना अपने तन - प्राण का।
प्रथित आत्म - निवेदन - भक्ति है ।६।

संत्रस्तों को शरण मधुरा शान्ति - सन्तापितों को।
निर्बोधों को सुमति विविधा औषधी पीड़ितों को।
पानी देना तृषित जन को अन्न भूखे नरों को।
सर्वात्मा भक्ति अति रुचिरा अर्चना संज्ञकर है।७।

नाना प्राणी तरु गिरिलता वेलि की बात ही क्या।
जो है भू में गगन तल में भानु स मृतकणों लौं।
सद्भावों के सहित उनमें कार्य प्रत्येक लेना।
सच्चा होना सुहृद उनका भक्ति है सख्य नाम्नी। ८।

जो प्राणि पुन्ज निजकर्म-निपीड़नों से।
नीचे समाज-वपु के पग लौं पड़ा है।
देना उसे शरण मान प्रयत्न द्वारा।
है भक्ति लोक-पति की पद सेवनाख्या।" ६।

भक्ति के इन रूपों की विवेचना करने के पश्चात् राधा फिर कहती है—

"वह चुकी प्रिय साधन ईश का।
कुँवर का प्रिय-साधन है यही।
इसलिए प्रिय की परमेश की।
परम पावन भक्ति अभिन्न है।"

प्रेम-रसानुभव के योग्य नहीं छोड़ता। प्रियप्रवास के आरम्भ में जैसा कुछ अंकित किया गया है, 'उसके दर्शन मनुष्य मात्र के जीवन में एक बार होते हैं और वैसी उदासी जो ब्रज में कृष्ण-वियोग से छाई, मनुष्य-मात्र के अन्तर में छाया करती है। प्रियप्रवास में इन्हीं भावनाओं का सजीव चित्र खींचा गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास जन-हित, जगत-हित, समाज-सेवा, आत्म-त्याग, ईश्वरानुभूति, एवं प्रकृति के मैत्री-भाव से सर्वथा ओत-प्रोत है।

११

प्रियप्रवास एवं कामायनी पर सूक्ष्म दृष्टि

प्रियप्रवास का अर्थ है कृष्ण का ब्रज से मथुरा जाना। अक्रूर के साथ कृष्ण मथुरा चले गए और फिर ब्रज न लौटे। ब्रज के लोग अपने सदन में उनके समग्र जीवन की गाथा कहते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण कथा-स्रोत ब्रज में ही प्रवाहित होता है। एक बात और है। काव्य की रचना के पूर्व भागवत प्रणीत कृष्ण-चरित्र केवल मुक्तक काव्य के उपयुक्त ही समझा जाता था। इस विषय को किसी ने प्रबन्ध-काव्य की रचना नहीं की थी, श्री ब्रजवासी दास ने अवश्य इस क्षेत्र में पैर रखा किन्तु यह प्रयास सफल न हुआ। हरिऔध जी ने उसी सीमित विषय को प्रबन्ध काव्य के लिए चुना, यह उनकी काव्य-प्रतिभा का द्योतक है।

अब तक जितना भी कृष्ण-साहित्य उपलब्ध था उसमें कृष्ण का देव-स्वरूप ही दिखाया गया था परन्तु अपनी इस रचना में हरिऔध

कर आनन्द में पर्यवसान कराने का प्रयास किया है। अतः यह एक सामल रूपक काव्य भी भासित होता है। इस गूढ़ तथा सुन्दर काव्य का विश्व साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह रूपक आरम्भ से अन्त तक पूर्ण है। जायसी के पद्मावत की भाँति कथात्मकता की झोंक में यह टूटा नहीं है।

लज्जा की जो प्रतिच्छाया कवि ने इस काव्य में प्रस्तुत की है वह इनकी कला का पुष्ट प्रमाण है। नारी के प्रति कवि की उदात्त भावना और उसके अनुरूप श्रद्धा का आदर्श रूप, इड़ा में बुद्धि का रूपक, मनु का प्रजापतित्व त्रिपुर नाश के पौराणिक आख्यान में इच्छा ज्ञान और कर्म का श्रद्धामय होकर शिव कल्याण में समा जाना आदि सभी कवि की अपूर्व कल्पना की परिचायक हैं।

प्रियप्रवास की कल्पना अपूर्व है किन्तु कामायनी की कल्पना के सामने उसकी कल्पना बिल्कुल नगण्य है, इसमें सन्देह नहीं।

प्रियप्रवास एक जीवन काव्य है। उसमें सहचर्य-जनित प्रेम की वृद्धि, नन्द तथा यशोदा का वात्सल्य, सखाओं का सख्य-भाव आदि आकर्षक चित्र मिलते हैं। इनमें हमें कवि की सच्ची अनुभूति के दर्शन हो जाते हैं। यशोदा कृष्ण की जीवन-रक्षा के लिए देवी देवताओं की मनौती करती है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर वह कंस के अत्याचारों का स्मरण कर कितनी भयभीत होती है। राधा का वियोगिनी होना और पवन के द्वारा कृष्ण के पास सन्देश भेजना कितना स्वाभाविक है? पवन-दूत में कितना मनोवैज्ञानिक चित्रण है। कहा जा सकता है कि कवि ने कथा की नींव अनुभूति पर और उसकी भित्ति कल्पना पर खड़ी की है।

कामायनी में मानवीय भावनाओं का सुन्दर चित्रण किया है। वह मानवीय-भावना प्रधान रूपक काव्य है। जब मनुष्य अभाव की अवस्था में होता है तब उसे चिन्ता सताती है। जब उसके पास कोई सम्बल

आदि स्थलों पर बड़ा ही सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। रहस्य के गूढ़ तत्वों की अधिकता में जीवन की अनुभूतियों की उसमें प्रधानता है।

प्रियप्रवास तथा कामायनी दोनों ही अपने अपने स्थानों पर सफल हुए हैं। दोनों काव्यों की भाषा प्रसाद-गुणों से रहित है। प्रियप्रवास संस्कृत निष्ठ होने के कारण और कामायनी छायावादी शब्दों के कारण साधारण लोगों की समझ से परे हैं। दोनों ही कवि कल्पना की उड़ान में इतने मग्न हो जाते हैं कि प्रबन्ध कल्पना लड़खड़ा उठती है। भाव भाषा शब्दशक्ति और अलंकारों की दृष्टि से दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है।

१२
प्रियप्रवास और सूर के माधुर्य भाव का तुलनात्मक अध्ययन

कुछ लोगों का कथन है कि प्रियप्रवास में सूर का माधुर्य-भाव है। अब हमें यह देखना है कि इस कथन में कहाँ तक सार है।

हिन्दी-साहित्य में सूर का माधुर्य-भाव एक महत्व-पूर्ण स्थान रखता है। माधुर्य का सम्बन्ध मन की प्रेम-भावना से है। महात्मा सूरदास के काव्य में इसका अविरल स्रोत प्रवाहित होता है। [illegible] का आलम्बन है कृष्ण का बाल रूप और माधुर्य का अंग वात्सल्य। आचार्य शुक्ल जी के अनुसार सूरदास जी वात्सल्य रस [illegible] कोना-कोना झाँक आए हैं। उन्होंने कृष्ण का बड़ा ही विपद

प्रयाग का माधुर्य भी सूर ऐसा है ! प्रियप्रवास का अध्ययन करने में सूर का सा माधुर्य उसम नहीं ज्ञात होता । उपर्युक्त ग्रन्थ में हरिऔध जी आदर्शवादी हो गए हैं । यही कारण है कि उनके वात्सल्य में उस स्वाभाविकता का परिचय नहीं मिलता जो सूर मे प्राप्त होता है। प्रियप्रवास में रोने-धोने की प्रधानता होने के कारण वात्सल्य का स्रोत ठीक से प्रवाहित ही न हो सका है। यद्यपि दाम्पत्य-प्रणय का आधार हरिऔध जी ने भी सहचर्य ही रखा है परन्तु उस में गद्य की सी वर्णन-शैली है। राधिका के इस कथन में "हृदय चरण पर चढ़ा ही चुकी हूँ, सविधि वरण की थी और कामना मेरी।" सवित्री का सा दृढ़ निश्चय अवश्य है पर सूरदास के सरल प्रणय से वह सर्वथा रिक्त है। प्रियप्रवास में सब कुछ दूसरों के मुख से कहला भर दिया जाता है। माधुर्य का निरूपण व्यंजित होता है कथित नहीं। प्रियप्रवास की राधा सूर की राधा की भाँति सरला नहीं, वे क्रीड़ा कला पुत्तली, सच्छास्त्र चिन्ता-परा, हाव भाव कुशला, भ्रू भंगिमा पँडिता आदि सभी गुणों से अलँकृत है। वे जनोपकार-निरता एवं समाज-सेविका भी है। प्रियप्रवास के कृष्ण भी सूर के कृष्ण से भिन्न है। प्रियप्रवास के कृष्ण सूर के कृष्ण की भाँति नन्द नंदन, मन-मोहन एवं रसिक-शिरोमणि न होकर व्रज-विभूषण, वीर-केशरी,स्वजाति सेवक एवं आदर्श युवा हैं। प्रियप्रवास के राधा और कृष्ण में सूर के राधा और कृष्ण की भाँति सहजोद्गार न होकर आदर्श प्राप्त होता है। हरिऔध की राधा पवन द्वारा कृष्ण के पास अपना सन्देश भेज कर अपने आदर्श भावों का व्यक्तिकरण करती है और कृष्ण के न लौटने पर वह जन-सेवा में सलग्न हो जाती है। उनके हृदय की प्रणय-भावना जन-सेवा तथा परोपकार की ओर उन्मुख हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रियप्रवास का माधुर्य सूर से भिन्न है। इसमें आदर्श सिद्धान्त और त्याग का प्राधान्य

उन्होंने अपनी ब्रज भाषा में लिखी हुई कविताओं में भी संस्कृत-वृत्तों का प्रयोग किया। परन्तु पद्य के क्षेत्र में हरिऔध जी की कोई भी रचना अभी तक ऐसी नहीं थी जिसकी शब्दावली संस्कृत हो। हरिऔध जी की इतनी सुन्दर संस्कृत-मिश्रित भाषा के दर्शन सर्व प्रथम प्रियप्रवास में ही हुए।

हरिऔध जी से ऐसी आशा थी कि वह प्रियप्रवास में भी उसी भाषा का प्रयोग करेंगे जिसका प्रयोग उन्होंने अधखिला फूल में किया था परन्तु हरिऔध जी ने इस का तिरस्कार कर दिया। प्रिय-प्रवास की भाषा का एक उदाहरण देखिए—

"यद्यपि वर्तमान पत्र और पत्रिकाओं में कभी-कभी एक आध भिन्न तुकान्त कविता किसी उत्साही युवक कवि की लेखनी से प्रसूत हो कर आजकल प्रकाशित हो जाती है, तथापि मैं यह कहूँगा कि भिन्न तुकान्त कविता भाषा-साहित्य के लिए एक बिल्कुल नई वस्तु है, और इस प्रकार की कविता में किसी काव्य का लिखा जाना तो 'नूतनं नूतनं पदे पदे' है। इसलिए महाकाव्य लिखने के लिए लाला-यित होकर जैसे मैंने बाल चापल्य किया है, उसी प्रकार अपनी अल्प-विषया-मति सहाय्य से अतुकान्त कविता में महाकाव्य लिखने का यत्न करके अतीव उपहासास्पद हुआ हूँ। किन्तु यह एक सिद्धान्त है कि 'अकरणात् मन्द कारणं श्रेयः' और इसी सिद्धान्त पर आरूढ होकर मुझसे उचित या अनुचित यह साहस हुआ है। किसी कार्य में सयत्न होकर सफलता लाभ करना बड़े भाग्य की बात है, किन्तु सफलता न लाभ होने पर सयत्न होना निन्दनीय नहीं कहा जा सकता।"

× × ×

मुझ में महाकाव्यकार होने की योग्यता नहीं, मेरी प्रतिभा ऐसी

उपयोगी होता है। मैं यह नहीं कहता कि अन्य प्रान्त वालों से घनिष्टता का विचार करके हम लोग अपने प्रान्त वालों की अवस्था और भाषा के स्वरूप को भूल जाँय। यह मैं मानूँगा कि इस प्रान्त के लोगों की शिक्षा के लिए और हिन्दी भाषा के प्रकृत रूप की रक्षा के निमित्त साधारण वा सरल हिन्दी में लिखे गए ग्रन्थों की ही अधिक आवश्यकता है, और यही कारण है कि मैंने हिन्दी में कतिपय संस्कृत-गर्भित ग्रन्थों की प्रयोजनीयता बतलाई है। परन्तु यह भी सोच लेने की बात है कि क्या वहा व ओं को उच्च हिन्दी से परिचित कराने के लिए ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता नहीं है, और यदि है तो मेरा ग्रन्थ केवल इसी कारण से उपेक्षित होने योग्य नहीं। जो सज्जन मेरा इतना निवेदन करने पर भी अपनी भौंह की वंकता निवारण न कर सकें उनसे मेरी यही प्रार्थना है कि वे 'वैदेही बनवास' के कर-कमलों में पहुँचने तक मुझे क्षमा करें, इस ग्रन्थ को मैं सरल-हिन्दी और प्रचलित छन्दों में लिख रहा हूँ।"

हरिऔध जी ने इन अवतरणों में उन लोगों के समाधान करने का पूरा पूरा साधन प्रस्तुत किया है जो लोग संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का प्रयोग करने के विपक्ष में है। उन्होंने अन्य प्रान्तों में उच्च-संस्कृत-गर्भित हिन्दी के आदृत होने का कारण प्रस्तुत किया है। जिन प्रांतों में इस भाषा का किंचित मात्र भी प्रभाव नहीं उन प्रान्तों में हरिऔध जी ने इस भाषा के अध्ययन की आवश्यकता बताई और अन्त तक उसका विरोध बनाए रखने वालों के लिए वैदेही-बनवास अर्पण करने का विचार प्रकट किया।

हरिऔध जी का यह निवेदन वास्तव में शालीनता मात्र था। भाषा विषय की अनुगामिनी होती है और किसी विचार-धारा को व्यक्त करने के लिए जितना स्थान हमारे पास होता है उतनी सरल तथा कठिन शब्दों वाली भाषा का हमें प्रयोग करना पड़ता है। ठेठ हिन्दी का ठाट की भाषा बड़ी कठोर है जिसका कारण विशेषणों की

२—वसंततिलका

भावों भरा मुरलि का स्वर मुग्धकारी।
श्रादी हुश्रा मरुत साथ दिगंत व्यापी।
पीछे पड़ा श्रवण में बहु भावुकों के।
पीयूष के प्रमुदवर्धक विन्दुश्रों-सा।

वंशी-निनाद सुन त्याग निकेतनों को।
दौड़ी समस्त जनतावि उमंगिता हो।
गोपी असंख्य बहु गोप तथांगनाएँ।
श्राई विहार रुचि से वन मेदिनी में।

हो हो सुवादित मुकुन्द सदँगुली से।
कान्तार में मुरलिकाजव गूँजती थी।
तो पत्र-पत्र पर था कल नृत्य होता।
रागांगना विधुमुखी चपलांगिनी का।

३—वँशस्थ

सुपक्वता पेशलता अपूर्वता।
फलादि की मुग्धकरी विभूति थी।
रसाप्लुता सी वन मॅंजु भूमि को।
रसालता थी करती रसाल की।

सुवत्तुलाकर विलोकनीय था।
विनम्र शाखा नयनाभिराम थी।
अपूर्व थी श्यामल पत्र-राशि में।
कदम्ब के पुष्प कदम्ब की छटा।

नितान्त लब्धी धनता विवर्द्धिनी।
श्रसंख्य पत्रावली श्रँकधारिणी।

२—वसंततिलका

भायों भरा मुरलि का स्वर मुग्धकारी।
आदों हुआ महत साथ दिगंत व्यापी।
पीछे पड़ा श्रवण में बहु भावकों के।
पीयूष के प्रमुदवर्धक विन्दुओं-सा
वंशी-निनाद सुन त्याग निकेतनों को।
दौड़ी समस्त जनता अति उमंगिता
गोपी असंख्य बहु गोप तथांगनाएँ।
आईं विहार रुचि से मन में
हो हो सुवादित मुकुन्द सदंगुलों से।
कान्तार में मुरलिकाजय र
तो पत्र-पत्र पर था कल नृत्य होता।
रागांगना विधुमुखी चप

३—वंशस्थ

सुपक्वता पेशलता
फल

र

शान्तिमय यह कैसा गेह में छा गया है।
पल पल जिसमें मैं आज यों चौंकती हूँ।
कँप कर गृह में की ज्योति छाई हुई थी।
छन-छन अति मैली क्यों हुई जा रही है।

२—मन्दाक्रांता

सूखा जाता कमल-मुख था होंठ नीला हुआ था।
दोनों आँखें विपुल जल में डूबती जा रही थीं।
शंकाएँ थीं विकल करती काँपता था कलेजा।
खिन्ना-दीना परम मलिना उन्मना राधिका थीं।

× × ×

३—शार्दूल विक्रीड़ित

यों ही आत्म प्रसंग श्याम वपु ने प्यारे सखा से कहा।
मर्य्यादा व्यवहार आदि ब्रज का पूरा बताया उन्हें।
ऊधो ने सबको सधीरज सुना स्वीकार जाना किया।
पीछे होकर के विदा सुहृद से आए निजागार वे।

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि हरिऔधजी ने केवल संस्कृत-वृत्तों को ही क्यों अपनाया? इसका सीधा साधा एक मात्र उत्तर है मातृ-भाषा हिन्दी को सुसम्पन्न करने के लिए। इसी कारण उन्होंने अपनी भाषा के गूढ हो जाने की ओर ध्यान न दिया। हरिऔधजी ने बंगला के मेघनाद-वध से प्रभावित होकर अतुकांत छन्दों में महाकाव्य लिखने का निश्चय किया। इससे पूर्व पंडित अम्बिकादत्त व्यास 'कंस वध' लिखकर महाकाव्य लिखने का असफल प्रयत्न कर चुके थे। फिर हरिऔध जी ने अतुकांत छन्दों में महाकाव्य लिखने का प्रयास किया तो आश्चर्य क्या है? संस्कृत-वृत्तों का एक सफल महाकाव्य

चार रूपों में प्राप्त होती है—१ उर्दू की मुहावरेदार शैली, २ हिन्दी की रीति कालीन शैली, ३ संस्कृत काव्य की शैली तथा ४ वर्तमान शैली। अपनी इन सब शैलियों में हरिऔध जी सर्वथा नवीन है। यों तो प्रियप्रवास की शैली में उच्च हिन्दी का दिग्दर्शन है परन्तु कहीं कहीं पर लम्बे लम्बे समासों के कारण उसका स्वरूप छिप सा गया है। कुछ अप्रसिद्ध शब्द भी उनकी शैली में प्राप्त होते हैं। हरिऔधजी ने विदेशी शैली का बहिष्कार कर उर्दू छन्दों को हिन्दी में इस प्रकार अलंकृत किया है कि उसमें चुटीलापन आ गया है। इस में हरिऔधजी को पूर्ण रूप से सफलता मिली है। उस शैली में मुहावरे भाषा का प्राण है।

हरिऔध जी संस्कृत काव्य की शैली में अतुकान्त कविता के एक सफल प्रयोग कर्त्ता है। वर्तमान शैली के चित्र पारिजात और वैदेही-बनवास में अधिक प्राप्त होते हैं। उनकी भाषा भी वृत्तों और विषय के अनुकूल है। कृत्रिमता उनकी शैली में नहीं आने पाई है। अपनी शैली को प्रभावोत्पादक तथा आकर्षक बनाने के लिए उन्होंने अनुप्रासों, उपमाओं तथा रूपकों का सहारा लिया है। संस्कृत तथा फारसी के बहुज्ञ होने के कारण वह प्रत्येक शब्द की आत्मा तथा विशिष्टता के ज्ञाता थे। यही कारण है कि उनका शब्द-शोधन कवित्व पूर्ण और सरस है। संगीतात्मकता उनकी शैली में प्रधान है।

रस—हरिऔध ने रसों का सुन्दर परिपाक किया है। उनके वात्सल्य तथा करुणा रसों में मानव-हृदय स्वयं बोलता दीख पड़ता है। शृंगार-वर्णन में उन्होंने वियोग पक्ष को प्रधान रखा है। पिछले पृष्ठों में हम उनके वात्सल्य तथा विप्रलम्भ शृंगार की आलोचना कर चुके हैं। अतः यहा हम केवल उन्हीं रसों पर विचार करेंगे जिन पर पीछे विचार नहीं किया गया है। हरिऔधजी ने करुणा रस को भी अपनाया है। करुणा रस का स्थाई भाव है शोक। प्रियप्रवास इससे सर्वथा ओतप्रोत है। इस रस ने उसमें इतनी वेदना, टीस, छटपटाहट

वसन्त को था यह शान्त वाटिका,
स्वभावतः कान्त नितान्त थी हुई।
परन्तु होती उसमें अशान्ति थी।
विकास की कौशल कारिणी क्रिया। ३।

अतीव थी कोमल कान्ति नेत्र की।
परन्तु थी शान्ति विषाद-अंकिता।
विचित्र मुद्रा मुख-पद्म की मिली।
प्रफुल्लता - आकुलता - समन्विता। ४।

प्रसादिनी पुष्प सुगन्ध-वर्द्धिनी।
विकाशिनी-वेलि, लता-विनोदिनी।
अलौकिकी थी मलयानिली क्रिया।
विमोहिनी-पादप पंक्ति मोदनी। ५।

अति जरा विजिता बहु चिन्तिता।
विकलता ग्रसिता सुख-वंचिता।
सदन में कुछ थी परिचारिका।
अधिकृता कृशता अवसन्नता। ६।"

३—श्रुत्यनुप्रास

संसार में सकल काल नृरत्न ऐसे।
हैं हो गये अवनि हैं जिनकी कृतज्ञा।
सारे अपूर्व गुण हैं हरि के बताते।
सच्चे नृरत्न वह भी इस काल के हैं। १।

कल मुरलि निनादी लोभनीयाँग शोभी।
अलि-कुल मति लोपी कुन्तली कान्ति शाली।
अयि पुलकित अँके आज लौं क्यों न आया।
वह कलित कपोलों कान्त आलाप वाला। २।

हरीतिमा का सुविशाल सिन्धु-सा।
मनोज्ञता की रमणीय भूमि-सा।
विचित्रता का शुभ सिद्ध पीठ-सा।
प्रशान्त वृन्दावन दर्शनीय था ॥२॥

मृदुल-कुसुम-सा है और तुने तूल-सा है।
नव-किशलय-सा है स्नेह के उत्स-सा है।
सदय हृदय ऊधो श्याम का है बड़ा ही।
अहह! हृदय मां के तुल्य तो भी नहीं है ॥३॥

२.— उत्प्रेक्षा

यह अभावुकता तम पुंज की।
सह सकी नहिं तारक-मण्डली।
वह विकास-विवर्द्धन के लिए।
निकलने नभ-मण्डल में लगी ॥१॥

तदपि दर्शक लोचन लालसा।
फलवती न हुई तिलमात्र भी।
नयन की लख के यह दीनता।
सकुचने सरसीरुह भी लगे ॥२॥

सब नभतल तारे जो उगे दीखते हैं।
वह कुछ ठिठके से सोच में क्यों पड़े हैं।
ब्रज दुख लख के ही क्या हुए हैं दुखारी।
कुछ व्यथित बने से या हमें देखते हैं ॥३॥

सखि! मुख अब तारे क्यों छिपाने लगे हैं?
वह दुख लखने की ताव क्या हैं न लाते।
परम विकल होके आपदा टालने में।
वह मुख अपना है लाज से क्या छिपाते ॥४॥

क्यों होती है सुरभि सुखदा माधवी मल्लिका की।
क्यों तेरी है दुखद मुझको पुष्प वेला बता तू।३।

अब हरिऔध जी की कला के विषय में हमे अधिक नहीं कहना है। उपर्युक्त उदाहरणों से हो यह स्पष्ट है कि प्रियप्रवास की रचना करने के समय तक हरिऔधजी की कला विकासोमुख हो चुकी थी। उसमे यथेष्ट गम्भीरता का समावेश हो चुका था।

१५
प्रियप्रवास की कथा

महाकवि हरिऔध जी ने अपना यह महाकाव्य सत्रह सर्गों में समाप्त किया है। अब हम प्रत्येक सर्ग की कथा पर संक्षेप में विचार करेंगे।

प्रथम सर्ग—इस सर्ग में कवि सन्ध्या की सुन्दर वेला का चित्रण करता हुआ बताता है कि जैसे ही सूर्य अपने विश्राम-भवन की ओर गया वैसे ही श्री कृष्ण की मुरली की मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी। गोप-गोपों के साथ श्री कृष्ण को बन भूमि से आता देख कर ब्रज के नर-नारी उनके कमल-मुख के दर्शन करने के लिए अपने अपने घरों से बाहर निकल आए। उस समय श्री कृष्ण का रूप वास्तव में देखने योग्य था। सभी लोगों के नेत्र चातक श्री कृष्ण के रूप-सुधा को पान करने में तन्मय हो रहे थे। कुछ अन्धेरा होते ही सब लोग वापस अपने अपने भवनों की ओर प्रस्थान करने लगे। कुछ समय पूर्व जो वन मनुष्यों से भरा हुआ था अब वह निर्जन होने के कारण सुनसान हो गया। सर्ग के अन्त में कवि ने कहा है—ब्रज की चित्र-

हुए भी यशोधरा ईश्वर से उनकी कुशल के लिए प्रार्थना कर रही थी।

चतुर्थ सर्ग—इस सर्ग में कवि ने राधा का वर्णन कर कृष्ण के व्रज-गमन की चर्चा से उत्पन्न दुःख का वर्णन किया है।

बरसाने ग्राम के नरेश वृषभानु की सुता राधा से कृष्ण का प्रेम था। प्रणयातिरेक के कारण खाते, पीते, उठते-बैठते राधा भी कृष्ण के रँग मे रँग गई थी। कृष्ण के मथुरा-गमन की बात सुन वह व्यथित होकर अपनी सखी से कहने लगी यदि कृष्ण मथुरा चले जायँगे तो मैं कैसे जीवित रहूँगी। मैं अपना सर्वस्व उनके चरणों पर होम कर चुकी हूँ; केवल विधि पूर्वक उनको अपनाने की इच्छा शेष है। यह पूर्ण होती नहीं दीख पड़ती। इस प्रकार उन्मत्तों की भाँति राधा अनेक प्रकार से प्रकृति को कोस रही थी।

पंचम सर्ग—श्री कृष्ण के मथुरा-गमन का दृश्य इस सर्ग में अंकित किया गया है। प्रातः ही समस्त लोग नन्द बाबा के द्वार पर एकत्रित हो गए। व्रज में सभी स्थानों पर सुनसान हो गया। सब लोग अपने घरों से निकल कर नन्द बाबा के घर आ गए। इतने में ही अक्रूर को साथ लिए हुए श्री कृष्ण नन्द बाबा के साथ आए। उदास-चित्त यशोदा भी अनेक स्त्रियों के साथ बाहर आ रही थी। उन्हें देख कर सब लोग रोने लगे। श्री कृष्ण और बलराम माता के चरणों को स्पर्श कर, ऐसे करुण वातावरण में रथ के ऊपर जा बैठे। माँ ने सच्चे हृदय से दोनों पुत्रों को आशीर्वाद दिया और अपने पति को उनकी रक्षा के लिए खूब समझाया। रथ को चलते देख बहुत सी गोपियाँ मार्ग में लेट गईं। नन्द बाबा ने उन्हें समझा कर दो दिन में लौटा लाने का आश्वासन दिलाया। जब तक रथ आखों से ओझल न हो गया सब लोग खड़े उसको ओर देखते रहे।

षष्ठम सर्ग—इस सर्ग में यशोदा की मनोदशा का चित्रण किया

नवम सर्ग—इस सर्ग में कृष्ण का उद्धव को व्रज भेजना तथा गोवर्द्धन पर्वत का महत्व वर्णन किया गया है।

एक दिवस अकेले बैठे-बैठे *व्रज-वासियों की याद ने कृष्ण को* विकल कर दिया। कृष्ण ने उद्धव को बुला कर कहा—'हे सखा! मैं यहां राजनीतिक परिस्थितियों में उलझा हुआ हूँ। अतः तुम व्रज के लोगों को मेरी ओर से सांत्वना दे आओ।' कृष्ण के कथनानुसार उद्धव प्रातः ही व्रज चल दिए। इसके पश्चात् कवि ने गोवर्धन पर्वत का महत्व अंकित किया है। तत्पश्चात् आम, जामुन, फालसा, नारंगी एवं लीची आदि वृक्षों का वर्णन तथा अनेक लताओं की सत्ता का प्रदर्शन किया है। वृन्दावन की प्राकृतिक शोभा तथा उसमें विचरने *वाले सारे पक्षियों का भी वर्णन कवि ने किया है। संध्या समय उद्धव* गोप-गोपिकाओं के निकट पहुँचे। उनके पीले कपड़े तथा साँवले रंग को देख कर, गोपियाँ उन्हें श्रीकृष्ण जान कर उनके पास आ पहुँची। किन्तु जब उन्होंने देखा यह कृष्ण नहीं और कोई हैं तो उनकी निराशा असीमित हो गई। उद्धव ने सब को सांत्वना दी।

दसम सर्ग—इस सर्ग में यशोदा की चिन्ता का वर्णन कवि ने किया है।

समस्त कार्यों से निवृत्त होकर जब उद्धव यशोदा के पास बैठे तो *वह अपनी दुःखपूर्ण कथा सुनाती हुई बोलीं—'हे उद्धव! तुम कहते* हो श्रीकृष्ण शीघ्र लौट आयेंगे परन्तु क्या प्यासा व्यक्ति पानी का नाम मात्र सुन लेने से अपनी पिपासा शान्त कर सकता है।' फिर उसने कृष्ण का कुशल-समाचार पूछा और अपनी कथा विस्तार के साथ सुनाई। तत्पश्चात् नन्द बाबा ने अपनी आप बीती सुनाते हुए कहा—*'एक दिवस मैं यमुना में स्नान करने गया। वहाँ धार में डूब गया।* उस समय सब लोग खड़े देखते रहे पर श्रीकृष्ण ने कालिन्दी में कूद कर मेरी जीवन-रक्षा की। कृष्ण के अलौकिक कार्यों का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ।

आकाश पर मंडराने लगे, उन से भयंकर शब्द करती हुई बिजली चमकने लगी। वज्र के प्रहार से भी अधिक डरावना शब्द था। सारी पृथ्वी जल मग्न हो गयी।

मूसलाधार जल से वृक्षों की डालियाँ टूट कर भूमि पर गिरने लगी, लोगों के घर खंडित होकर गिरने लगे। इस प्रकार व्रज-निवासियों का जीवन संकट में पड़ गया, पूरा दिन जल बरसते बीत गया, रात्रि भी समाप्त हो गई। और फिर नया दिन आ गया, परन्तु जल का बरसना तनिक भी कम न हुआ और न हवा का वेग ही थमा, सभी व्रज-वासी इसीलिये एकत्रित होकर व्रजेश के समीप पहुँचे। व्यथित व्रजाधिपति इस आपत्ति के विनाश का कोई भी उचित उपाय न सोच पाये, न उन दुःखियों को ही कोई शुभ-सम्मति दे सके।

इसी बीच बाल मुकुन्द वहाँ आ पहुँचे। और अपनी उचित सम्मति उन्हें बतलाने लगे। अब इस दैवी प्रकोप का इसके अति-रिक्त कोई और समाधान नहीं है कि सभी व्रज के निवासी गिरिराज गोवर्धन की शरण में चलें। उसी पर्वत की कन्दराओं में अपने संकटमय प्राणों को बचावें। सब लोगों ने, बालकृष्ण के विचारों का समर्थन किया। समस्त जन-समुदाय अपने-अपने घरों को छोड़ कर चल पड़ा गोवर्धन की ओर। वीर कृष्ण, गोप बालकों के साथ स्थान-स्थान पर लोगों को नाना प्रकार की सुविधायें पहुँचाने लगे। उन्होंने गुफाओं में भी लोगों की अनेकों सहायतायें की, इस भाँति लोगों ने व्रजेन्द्र कृष्ण की कृपा से अपने प्राण बचाये।

आह! उद्धव! व्रज भूमि के परम प्रिय,-प्राण-स्वरूप श्री कृष्ण जब लोगों से इतने दूर चले गये, फिर क्यों न वे दुःख मनावें? जल की बाढ़ से जिस भूमि की रक्षा उन्होंने की, आह! आज वही व्रज-भूमि फिर से लोगों की अश्रु-धाराओं के बहाव में डूब गई है।"

ज्योंही परम-प्रिय-कृष्ण के यशों का वर्णन एक युवक ने समाप्त

यहाँ आ पहुँचे। उन्हें आते देखकर सभी ग्वाले फूले न समायें। बड़े ही आदर भाव से उन्हें बिठा कर माधव के विषय में पूछने लगे। उद्धव भी प्रसन्न चित्त से ब्रज-देव की कथा सुनाने लगे। पहले सभी ग्वालों ने मुग्ध होकर कृष्ण के विषय में सुना और फिर स्वयं ही व्यथित स्वर में कहने लगे—

यद्यपि कृष्ण यदुवंशी थे, राजकुमार थे लेकिन फिर भी वे सदैव ग्वाल-बालों के साथ ही रहे, वे न तो ब्रज भूमि को भुला सकते हैं और न यह ब्रज भूमि ही उन्हें भुलायेगी। वे महान् गुण सम्पन्न थे, दयालु और सहृदय थे, वे राजकुमार थे, गायों को चुगाना उनका काम नहीं था, परन्तु व फिर भी मधुबन में आते थे, बन मे विहार करने क लिये और ज्ञानार्जन के लिये ही आते थे, प्रकृति की अनुपम छटा देखकर वे विमुग्ध हो जाते। इसके अलावा वनस्थली में हिंसक दुष्ट जन्तुओं को भी बड़ी वीरता से वे संहारते थे।

एक समय इसी मधुबन में एक विकराल भीमाकार नाग रहता था। जब वह अपने विशालकाय शरीर को समेट, फन फैलाकर बैठता था तो स्तूप के समान दिखलाई देता था। उसे देखकर सभी प्राणी भयभीत होते। बहुत से निरीह पशु-पक्षी व्याल के गाल में सदा के लिये समा जाते थे। एक दिन ग्वाल-बालकों के साथ श्री कृष्ण बन में शांति से बैठे हुये थे। उन्होंने प्राणियों का करुण-क्रन्दन जब सुना तो वे वट-वृक्ष पर चढ़ गये। वहाँ से उन्होंने देखा कि सर्प निरापराध जन्तुओं का संहार कर रहा है। वन म त्राहि-त्राहि मची हुई है। पराक्रमी कृष्ण पेड़ से उतर कर उस नाग के समीप पहुँचे। उन्होंने बाँसुरी की मनमोहक ध्वनि से उसे वशीभूत किया। और फिर अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा सदा के लिये काल व्याल का अन्त कर दिया।

इसी बन में एक बार एक विशाल घोड़ा था। जो काल के समान भयंकर और कष्टकारक था। उसने सम्पूर्ण बनस्थली में महाभय सा

हारिणी बनी हुई थीं। इसी समय गोपियों का मनूर कालिन्दी के किनारे पर आ पहुँचा, अमित जल को देखकर विरहिणी बालाओं को श्याम की याद आ गई। उनके नयनों से अश्रु धारा बह निकली। ऐसे मार्मिक दृश्य को देखकर उद्धव का हृदय द्रवीभूत हो गया, वे गोपिकाओं के निकट पहुँचे और नाना प्रकार के उपदेश देकर उन्हें शान्त्वना देने लगे। गोपियाँ शान्त चित्त से उद्धव जी के महाज्ञान के उपदेश सुनती रहीं। लेकिन बाद में व्यथित स्वर में कहने लगी, हे उद्धव ! ऐसे गुरुज्ञान की शिक्षायें हमारे लिये व्यर्थ हैं। हृदय में से श्याम की प्रभु-मूर्ति को निकालना तभी सम्भव है जब हृदय को ही तन से बाहर निकाल दिया जाय, अन्यथा नहीं। उन्हें भुलाना असम्भव है, इसके लिए अगर कुछ प्रयत्न भी किये जाय तो व्यर्थ होंगे। ब्रज-भूमि में ऐसी अनेकों वस्तुयें हैं जिनको देख कर श्याम की स्मृति फिर जाग्रत हो जाती है। उन्हें तभी भुलाया जा सकता है जब यमुना-जल सूख जाये, लतिकायें जल जावें, वियोगिनी ब्रज-बालाओं के नयन फूट जायें, हृदय नष्ट हो जाय, और सारा वृन्दावन उजड़ जाय।

ज्योंही एक गोपी ने ये बातें समाप्त की, त्योंही दूसरी गोपी कहने लगी —

अब कृपा करके हे उद्धव, मथुरा जाकर मुरली मनोहर कृष्ण को वापिस लाओ, तभी ब्रज के प्राणी जीवित रह सकते हैं, ब्रज को फिर से जिलाने का अब एक मात्र साधन यही है।

आह ! कुंवर कितने अच्छे स्वभाव के थे। जब इस ब्रज भूमि में वे रहते थे, तब कितना मन-मोहक वातावरण हो जाता था, एक अलौकिक शोभा यहाँ की थी, कोमल-कलियाँ आनन्द-विभोर होकर झूमती थीं, सरस सरितायें कल-कल निनाद करती हुई किलकारी मारती हुई बही चली जाती थीं, गगन-मण्डल में हिमांशु मुस्कराता आ अमृत बरसाता था, तब वास्तव में एक स्वर्गीय-शोभा इस भूमि

फिर खिन्न हो जाती है। यह बावली सी उन्मत्त बालिका कभी भौंरों से बातें करती, तो कभी फूलों से।

गिरधर-गोपाल के प्रेम में भूली बालिका ऐसा अनुभव करती है कि मानों कृष्ण की मधुर मुरलिका बज रही हो। उस ध्वनि से उसे सिहरन सी होती है। प्रियतम की याद में खोयी हुई व्यथिता उन कुन्जों-लतिकाओं, अनेकों से कृष्ण की स्मृत में बातें करती रहती है। उसके कजरारे-नयनों से आँसुओं की धारा बह निकलती है। वह फिर चुपचाप अनमनी-सी अपने घर को चली जाती है, लेकिन उस करुणामय दृश्य से सहृदय उद्धव मर्माहत हो गये। चुपचाप वह सब कुछ सुनते रहे, लेकिन तनिक भी न बोल सके।

षोड्ष सर्ग—विमुग्धकारी बसन्त का समय था, चारों ओर फूल खिले थे, कलियाँ मन्द-मन्द हवा के स्पर्श से झूम रही थी। लेकिन यह सब इतना सरस और सुन्दर न था जितना होना चाहिये था केवल वृन्दावन-विपिन-विहारी, श्याम के वियोग में।

इसी तपोवन के समान वाटिका के मध्य एक कुन्ज में जहाँ साँवले फूलों के समीप राधिका नित्य बैठती थी, वहीं उद्धव ने उस नीरव करुणा मयी को देखा, उसकी ऐसी अलौकिक भक्ति-भावना देखकर भावुक उद्धव की हृदय दशा बड़ी विचित्र हो गई। वहीं पर बैठकर उद्धव जी श्रीकृष्ण का संदेश सुनाने लगे।

"जीवनाधार! इस निर्मम नियति ने क्यों हमें भिन्न किया है? जिन स्नेहियों के एक ही हृदय हैं, फिर विधाता ने उनका शरीर अलग क्यों किया? ऐसे भाग्य-चक्र की गति को कोई नहीं समझ सकता। लेकिन इस जगत मे जो भी कार्य होते हैं वे केवल शुभ के लिए ही होते है।

वास्तव में अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा जिनको जग-हित

फिर न तो गोपाल कृष्ण ही आये, न उनका संदेश ही, इस से और भी अधिक व्यथा व्रज भूमि में फैल गई, सम्पूर्ण व्रज-प्राणी घनश्याम की राह में अपनी पलकों को बिछाये हुये थे। सभी यही सोच रहे थे कि व्रजेश कृष्ण अब आयेंगे, और अब तो आ ही जायेंगे। व्रज में यद्यपि अब तक अनेकों सम्वाद आ चुके थे, लेकिन इस सम्वाद से सभी की आशायें समाप्त हो गईं।

आह! सभी व्रज वासी शोक-सागर मे समा गये। विरह-व्यथा की पराकाष्ठा हो गई। लोग यह दु:खमयी समाचार सुन कर के फूट-फूट कर रोने लगे। वे अपने साहस, शान्ति तथा धैर्य को खो बैठे। जब उन्होंने यह सुना कि "मगधपति के उत्पातों से दुःखी होकर श्याम अपने प्रिय नगर मथुरा को तज कर द्वारिका जा बसे हैं।" जिस प्रकार शरद ऋतु के बीतने पर तृषित पपीहा स्वाति जल न पा सकने से उदास हो जाता है, उसी प्रकार कृष्ण के द्वारिका चले जाने से सभी व्रज-वासी निराश हो गये, वियोगियों के नयनों से जल के स्थान पर रक्त की धारायें बह निकलीं। सम्पूर्ण सुख, ऐश्वर्य, तथा शोभा उन्हें फीकी लगने लगी।

धीरे-धीरे समय बीतता गया, उनके हृदय मे विरह व्यथा कुछ कम होने लगी। लेकिन सभी सुमधुर स्वरों में कृष्ण के यशोगान को गाते थे। कृष्ण की पावन स्मृतियों से उनके मन में कुछ शान्ति तथा सुख होता था।

देवी राधिका अत्यन्त अशान्त भावनाओं की थी, विरह-वेदना को अब वह सन्तप्त लोगों की सेवा करके कम करने लगी। उसका स्नेह विश्व-स्नेह में परिणत हो चला, दुखियों के दुःख को दूर करके वह अत्यन्त शान्ति का अनुभव करती थी। सभी विरहणी व्रज-बालाओं को शान्त्वना देती थी, उन्मना गोपिकायें उसकी बातों को ।न से सुनतीं।

१६
प्रियप्रवास का हिन्दी साहित्य में स्थान

पिछले पृष्ठों में हमने प्रियप्रवास पर विषद रूप से विचार किया था। अब हमें उसका हिन्दी-साहित्य के मध्य स्थान निर्धारित करना है। प्रियप्रवास के विषय में कुछ विद्वानों के विचार देखिए—

"उपाध्याय जी में लोक संग्रह का भाव बड़ा प्रबल है। उक्त काव्य में श्रीकृष्ण व्रज के रक्षक नेता के रूप में अङ्कित किए गए हैं। खड़ी बोली में इतना बड़ा काव्य अभी तक नहीं निकला है। बड़ी भारी विशेषता इस काव्य की यह है कि यह संस्कृत के वर्ण-वृत्तों में है। उपाध्याय जी का संस्कृत पद-विन्यास बहुत ही चुना हुआ और काव्योपयुक्त होता है।

यह काव्य अधिकतर वर्णात्मक है। वर्णन कहीं-कहीं बहुत मार्मिक है—जैसे कृष्ण के चले जाने पर व्रज की दशा का वर्णन। विरह-वेदना से क्षुब्ध वचनावली के भीतर जो भाव की धारा अनेक बल खाती, बहुत दूर तक लगातार चली चलती है, उसमें पाठक अपनी सुध-बुध के साथ कुछ काल के लिए मग्न हो जाता है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"खड़ी बोली में ऐसा सुन्दर, प्रशस्त, काव्य-गुण-सम्पन्न और उत्कृष्ट काव्य आज तक दूसरा निकला ही नहीं। हम इसे खड़ी बोली के कृष्ण-काव्य का सर्वोत्तम प्रतिनिधि कह सकते हैं। वर्णनात्मक काव्य होकर यह चित्रोपम, सजीव, रोचक, तथा रसपूर्ण है। वर्णन शैली बड़ी ही चोखी और चुटीली है, भावानुभावादि का भी अच्छा मार्मिक तथा

स्वर्ण सुअवसर

प्रिय महोदय,

यह सूचित करते हुए हमें हर्ष हो रहा है कि अब आपको हिन्दी की किसी पुस्तक के लिये न भटकना पड़ेगा साथ ही साथ कोर्स की पुस्तकों के लिये भी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सभी परीक्षाओं—प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा, प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रवेशिका, विनोदिनी तथा विदुषी, बी० ए०, एम० ए० आदि में चलने वाली सभी हिन्दी की पुस्तकें, लाइब्रेरियों तथा स्कूलोपयोगी पुस्तकें, नार्मल में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकें हमारे यहाँ से आसानी से प्राप्त हो जायँगी। सुविधायें भी हम अधिकाधिक देंगे।

सभी पुस्तकें एक ही स्थान से प्राप्त हो जायँ, यह सुविधा आपको कहीं से भी नहीं प्राप्त हो सकती। इससे आपके बहुमूल्य समय तथा खर्च में भारी बचत होगी।

दूसरी ओर हमारे नियम पढ़िये, कितने साधारण नियम हैं। आप ग्राहक बनकर लाभ उठाएँ।

हमारा उद्देश्य हिन्दी तथा आप की सेवा करना है। उसे कामयाब बनाएँ। अपना बहुमूल्य आर्डर भेजिए। सूची-पत्र मँगा लें।

हम आपके आदेश की प्रतीक्षा में हैं। योग्य सेवा!

भवदीय—

परमेश्वर दीन वर्मा, एम० ए०,

संचालक

नवयुग पुस्तक भण्डार,

अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ।